ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

दिसम्बर २०१९ Date of Printing = 05-12-19
प्रकाशन दिनांक= 05-12-19
वर्ष ४९ : अङ्क २
दयानन्दाब्द : १९५
विक्रम-संवत् : मार्गशीर्ष-पौष २०७६
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,१२०

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व
सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओमप्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति १५.०० रु०
वार्षिक शुल्क १५०) रुपये
पंचवर्षीय शुल्क ५००) रुपये
आजीवन शुल्क ११००) रुपये
विदेश में ५०००) रुपये

इस अंक में

- आर्य समाज क्या? क्यों? कैसे? २
- वेदोपदेश ३
- हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द ४
- मन्त्रार्थ में विशेषता ७
- आर्यसमाज नया बांस के इतिहास...... १०
- धर्मग्रंथों पर धारणा की चोट १३
- श्रद्धा और आनन्द का संगमः...... १६
- बुद्धिः पर्यवतिष्ठते १९
- दलितोद्धार की आड़ में २३

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश
प्रचार संस्करण ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

आर्य समाज क्या? क्यों? कैसे?

(रोहित आर्य मो. ०८९५८६८२४८९)

गीतः- आर्य समाजी नाम को सुनकर तर्जः- गोरखपुर की जेल में बैठा

आर्य समाजी नाम को सुनकर, पाखण्डी थर्राते हैं,
नजर नहीं फिर आते हैं, ईश्वर के गुण गाते हैं।
ढोंग और आडम्बर छिपकर, अपनी जान बचाते हैं,
ईश्वर के गुण गाते हैं, नजर नहीं फिर आते हैं॥0॥

आर्य समाज है नाम जगत को, सच्चा पथ दिखलाने का,
वेदों की प्राचीन पद्धति, को सबको सिखलाने का।
ईश्वर की पावन वाणी, हर मानव तक पहुँचाते हैं॥1॥
ईश्वर के गुण गाते हैं......

भूत-प्रेत, ग्रह-उपग्रहों की, चाल नहीं फिर चलती है,
गुरु-घण्टालों, पीर और मुल्लों की दाल न गलती है।
सुनकर इसका नाम सिर्फ, सब भूत-प्रेत उड़ जाते हैं॥2॥
ईश्वर के गुण गाते हैं......

बिल्ली अगर रास्ता काटे, फर्क नहीं फिर पड़ता है,
दयानन्द के चेलों को न, फिर पाखण्ड जकड़ता है।
शनि और राहू-केतु भी, उल्टे लटक जाते हैं॥3॥
ईश्वर के गुण गाते हैं......

अपने जीवन को जीने का, सबको है अधिकार यहाँ,
हर एक प्राणी ईश पुत्र है, करो सभी को प्यार यहाँ।
जीव मात्र की रक्षा के हित, दयाभाव अपनाते हैं॥4॥
ईश्वर के गुण गाते हैं......

मात-पिता गुरु आचार्यों की, सेवा यही सिखाता है,
धरती पर ही स्वर्ग मिलेगा, सबको राह दिखाता है।
सच्चे ईश्वर को पाने का, सच्चा पथ दिखलाते हैं॥5॥
ईश्वर के गुण गाते हैं......

राष्ट्रभक्ति और स्वाभिमान के, भाव जागृत करता है,
देशद्रोह की कुटिल भावना, को पल में मृत करता है।
पढ़ सत्यार्थ प्रकाश स्वयं ही, राष्ट्रभक्त बन जाते हैं॥6॥
ईश्वर के गुण गाते हैं......

हर मनुष्य पावन वेदों को, पढ़ सकता, सुन सकता है,
स्त्री, शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्रीय, हर कोई गुन सकता है।
पहनाकर उपवीत सभी को, पावन **आर्य** बनाते हैं॥7॥
ईश्वर के गुण गाते हैं......

ऋषिवर दयानन्द से, हम सबने यह शक्ति पाई है,
देश-धर्म के विरोधियों को, नानी याद दिलाई है।
यज्ञों को करके धरती को, **"रोहित"** स्वर्ग बनाते हैं॥8॥
ईश्वर के गुण गाते हैं......

❑❑

विनम्र अपील

दयानन्द सन्देश के समस्त सम्मान्य सुविज्ञ पाठकों की सेवा में विनम्र निवेदन है कि 'दयानन्द सन्देश' का शुल्क कई दशकों से यथावत चला आ रहा है, जबकि कागज, कम्पोज और प्रिण्टिंग आदि का व्यय कई गुना बढ़ा है। यह भी सर्वविदित है कि हम किसी प्रकार का विज्ञापन भी 'दयानन्द सन्देश' में नहीं देते।

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि 'दयानन्द सन्देश' के स्थापनाकाल (लगभग ५० वर्ष) से अब तक आजीवन सदस्यों से पुनः कोई शुल्क नहीं लिया गया है। अतः बहुत विचार-विमर्श के बाद निर्णय लिए गए-

सदस्यता का नवीनीकरण किया जाए। जिसके लिए शुल्क विवरण निम्न प्रकार है -

वार्षिक शुल्क :- १५० रुपए पंचवर्षीय शुल्क :- ५०० रुपए

आजीवन शुल्क :-११०० रुपए (१५ वर्ष)

आप निम्न खाते में उपर्युक्तानुसार शुल्क जमा करा सकते हैं -

खाता धारक : **आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट**
बैंक : यूनियन बैंक ऑफ इंडिया,
अशोक विहार शाखा, दिल्ली
खाता क्रमांक : 307304010011320
IFSC : UBIN0539660

आशा ही नहीं, अपितु पूर्ण विश्वास है कि आप सबका स्नेहपूर्ण सहयोग मिलेगा।

दिनेश कुमार शास्त्री, व्यवस्थापक,
दूरभाष : ९६५०५२२७७८

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश मनुष्य का आलस्य परम शत्रु है। उससे मनुष्य सदा दूर रहकर सर्वद्रष्टा व न्यायाधीश परमात्मा को सदा ध्यान में रखें और उसकी आज्ञा व शुभ कर्मों को करते हुए, ब्रह्मचर्य के पालन से और युक्त आहार-विहार के द्वारा अल्पकाल में होने वाली मृत्यु को दूर हटायें।।

दीर्घतमाः ऋषिः। आत्मा=परमात्मा देवता। भुरिग अनुष्टुपू छन्दः। धैवतः स्वरः।।

अथ वैदिककर्मणः प्राधान्यमुच्यते।

अब वैदिक कर्म की प्रधानता का उपदेश किया जाता है।

ओ३म् कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

(यजु० ४०।२)

पदार्थः **(कुर्वन्)** **(एव)** **(इह)** अस्मिन् संसारे **(कर्माणि)** धर्म्याणि वेदोक्तानि निष्काम-कृत्यानि **(जिजीविषेत्)** जीवितुम् इच्छेत् **(शतम्)** **(समाः)** संवत्सरान् **(एवम्)** अमुना प्रकारेण **(त्वयि)** **(न)** निषेधे **(अन्यथा)** **(इतः)** अस्मात् प्रकारात् **(अस्ति)** भवति **(न)** निषेधे **(कर्म)** अधर्म्यमवैदिकं मनोरथसम्बन्धि कर्म **(लिप्यते)** **(नरे)** नयनकर्त्तरि।

सपदार्थान्वयः मनुष्य **(इह)** अस्मिन् संसारे **(कर्माणि)** धर्म्याणि कर्माणि वेदोक्तानि निष्कामकृत्यानि **(कुर्वन्नेव)** **(शतम्)** **(समाः)** संवत्सरान् **(जिजीविषेत्)** जीवितुम् इच्छेत्। **(एवम्)** अमुना प्रकारेण **(धर्म्मे)** **(कर्माणि)** प्रवर्त्तमाने **(त्वयि)** **(नरे)** नयनकर्त्तरि **(न)** **(कर्म)** अधर्म्यम् अवैदिकं मनोरथ **सम्बन्धिकर्म** **(लिप्यते)** **(इतः)** अस्माद् प्रकाराद् **(अन्यथा)** **(नास्ति)** न भवति लेपाभावः।

भावार्थः मनुष्य **(इह)** इस संसार में **(कर्माणि)** धर्मयुक्त वेदोक्त निष्काम कर्मों को **(कुर्वन्नेव)** करता हुआ ही **(शतम्)** सौ **(समाः)** वर्ष **(जिजीविषेत्)** जीने की इच्छा करे। **(एवम्)** इस प्रकार से धर्मयुक्त कर्म में लगे हुए **(त्वयि)** तुझ **(नरे)** नायक नर में **(कर्म)** अपने मनोरथ से किए अधर्मयुक्त अवैदिक कर्म **(न लिप्यते)** लेप नहीं रहता। **(इतः)** इस वेदोक्त से भिन्न **(अन्यथा)** अन्य प्रकार के कर्मों के लेप का अभाव **(न)** नहीं **(अस्ति)** है।।

भावार्थ मनुष्या आलस्यं विहाय सर्वस्य द्रष्टारं न्यायाधीशं परमात्मानं कर्त्तुमर्हां तदाऽऽज्ञां च मत्वा शुभानि कर्माणि कुर्वन्तोऽशुभानि त्यजन्तो ब्रह्मचर्येण विद्यासुशिक्षे प्राप्योपस्थेन्द्रिय निग्रहेण वीर्यमुन्नीयाऽल्पमृत्युं घ्नन्तु, युक्ता-ऽऽहारविहारेण च शतवार्षिकमायुः प्राप्नुवन्त। यथा-यथा मनुष्याः सुकर्मसु चेष्टन्ते, तथा-तथैव पापकर्मतो बुद्धिर्निवर्तते। विद्याऽऽयुः सुशीलता च वर्धते।।

भावार्थ मनुष्य लोग आलस्य को छोड़कर सबके द्रष्टा न्यायाधीश परमात्मा को और आचारण करने योग्य उसकी आज्ञा को मानकर शुभ कर्मों को करते हुए और अशुभ कर्मों को छोड़ते हुए ब्रह्मचर्य के द्वारा विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त करके उपस्थ इन्द्रिय के संयम से वीर्य को बढ़ाकर, अल्पायु में मृत्यु को हटावें और युक्त आहार-विहार से सौ वर्ष की आयु को प्राप्त करें

जैसे-जैसे मनुष्य श्रेष्ठ-कर्मों की ओर बढ़ते हैं, वैसे-वैसे ही पाप-कर्मों से उसकी बुद्धि हटने लगती है। जिसका फल यह होता है कि विद्या, आयु और सुशीलता आदि गुणों की वृद्धि होती है।

(''दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर'' से उद्धृत, व्याख्याता श्री आचार्य सुदर्शन देव)

हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द

(धर्मपाल आर्य)

मेरे कुछ मित्र मुझसे पूछ रहे थे कि नौ नवम्बर को आयोध्या मुद्दे पर सुप्रीम कोर्ट ने जो फैसला सुनाया है उस पर आपकी निजी राय क्या है? फिर कुछ ने प्रश्न किया कि पाँच अगस्त को जम्मू कश्मीर से धारा 370 व 35ए को केन्द्र ने समाप्त कर दिया है इस पर आपकी क्या सम्मति है? कुछ ने पूछा कि हाल ही में (21 अक्टूबर) सम्पन्न दो राज्यों (हरियाणा और महाराष्ट्र) में हुए चुनावों को आप किस सन्दर्भ में देखते हैं? उपरोक्त तीनों प्रश्नों का उत्तर मैं लेखबद्ध करने का विचार कर ही रहा था और इसके लिए मैंने स्वयं को मानसिक रूप से तैयार भी कर लिया था कि तभी मेरे मन में एक प्रश्न उठा कि क्या अबकी बार अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द के व्यक्तित्त्व के विषय पर लिखकर उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि और राष्ट्र निर्माण में उनके अमिट योगदान को याद कर कृतज्ञता व्यक्त नहीं की जाएगी? उपरोक्त तीनों प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर मौखिक देकर फिर मैंने विचार किया कि मुन्शीराम से, महात्मा मुन्शीराम और स्वामी श्रद्धानन्द तक उनका पारिवारिक, सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन कितनी कितनी चुनौतियों और संघर्षो से भरा हुआ था। सभी चुनौतियों का स्वामी जी ने धीरता और वीरता के साथ सामना किया।

वे श्रद्धानन्द जी जिन्होंने न केवल महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" अभियान को अपना लक्ष्य बनाया अपितु उस सपने को साकार करने के लिए तन-मन और धन से अविस्मरणीय योगदान दिया; वे श्रद्धानन्द जिन्होंने 4 अप्रैल 1919 को दिल्ली के प्रसिद्ध जामा मस्जिद से वेद की पावन ऋचाओं का वाचन करते हुए अपना ऐतिहासिक ईश्वर भक्ति व राष्ट्र भक्ति से ओत-प्रोत उद्बोधन दिया; वे श्रद्धानन्द जो गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रबल समर्थक थे, वे श्रद्धानन्द जो शुद्धि आन्दोलन के सूत्रधार थे, वे श्रद्धानन्द जी जिन्होंने आर्य समाज की वैदिक सनातनी विचारधारा को पूर्व से पश्चिम तक उत्तर से दक्षिण प्रचारित-प्रसारित किया; वे श्रद्धानन्द जिन्होंने अछूतोद्धार के कार्यक्रमों का सफलतापूर्वक नेतृत्व किया; वे श्रद्धानन्द जी जिन्होंने मिस्टर गाँधी को महात्मा गाँधी के नाम से ख्याति दिलायी; वे श्रद्धानन्द जी जिन्होंने शिरोमणि सार्वदेशिक उप प्रतिनिधि सभा के प्रथम प्रधान का दायित्व सफलतापूर्वक निभाया; वे श्रद्धानन्द जी जिन्होंने गुरुकुलों के रूप में अनेक केन्द्रों की स्थापना की; वे श्रद्धानन्द जी जिन्होंने सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्धों की स्थापना के मध्य खड़ी छोटी जाति, बड़ी जाति की दीवार को दृढ़ता के साथ गिराया; वे श्रद्धानन्द जी जिन्होंने हिन्दू-मुसलमानों के बीच सौहार्द स्थापित करने में निष्पक्षता और निष्छलता से अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई; वे श्रद्धानन्द जी जिन्होंने अपने द्वारा स्थापित गुरुकुल में सफल आचार्य की भूमिका निभाई; वे श्रद्धानन्द जी जिन्होंने सत्य व न्याय के सिद्धान्तों को लेकर असत्य, अन्याय और स्वार्थ से कभी भी किसी भी कीमत पर समझौता नहीं किया और वे श्रद्धानन्द जी जिन्होंने 30 मार्च 1919 को अंग्रेजों के राष्ट्रविरोधी रांलेट एक्ट नामक काले कानून के विरुद्ध छिड़े विशाल सत्याग्रह का न केवल सफलतापूर्वक नेतृत्व किया अपितु उस सत्याग्रह को रोकने आई अंग्रेजी सेना की संगीनों के सामने निर्भीकता के साथ अपना सीना अड़ाते हुए अंग्रेजी शासन के विरुद्ध हुंकार भरी; ऐसे महान् व्यक्तित्त्व के धनी स्वामी श्रद्धानन्द जी का यह राष्ट्र ऋणी है।

उससे पूर्व कि मैं स्वामी जी के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व के विषय में लिखूँ, मुझे प्रो० सुधाकर एम.ए. की निम्नलिखित पंक्तियाँ स्मरण हो रही हैं जिन्हें यहाँ लिखना अप्रसांगिक नहीं होगा। वे स्वामी जी की महिमा का गुणगान करते हुए लिखते हैं- "आर्य समाज

और वैदिक धर्म की जो सेवा उन्होंने की है उसका निर्देश करना मानो सूरज को दीपक दिखाना है। स्वामी जी का हृदय इतना विशाल था कि उसमें मुसलमान, ईसाई, जैन मतमतान्तर वालों के लिए स्थान था; स्वामी जी सबसे प्रथम व्यक्ति थे; जिन्होंने हिन्दू होते हुए भी मस्जिद में मुसलमानों को धर्म का उपदेश दिया था।"

सुधाकर महोदय की उक्त पंक्तियाँ कल्याण मार्ग के पथिक व अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द के व्यक्तित्त्व की उदात्तता को और वैचारिक व्यापकता को दर्शाती हैं लेकिन इनके जीवन में अनेक घटनाएँ ऐसी हैं जो कि उनके व्यक्तित्त्व की उदात्तता एवं वैचारिक व्यापकता के साथ-साथ उनके आत्मिक बल को भी दर्शाती हैं तथा ईश्वर के प्रति उनकी अगाध आस्था को भी अभिव्यक्त करती हैं। इस प्रसङ्ग में मैं एक घटना का संक्षिप्त में उल्लेख करना चाहूँगा।

घटना इस प्रकार थी- सद्धर्म प्रचारक में सनातन धर्म सभा पंजाब के उपदेशक पं. गोपीनाथ जी के सम्बन्ध में एक छोटा सा सम्पादकीय लेख प्रकाशित हुआ। उस लेख में पं. गोपीनाथ जी के चरित्र पर आक्षेप किया गया था। उससे नाराज होकर पं. गोपीनाथ ने सद्धर्म प्रचारक के सम्पादक और प्रकाशक पर मानहानि का दावा कर दिया। इस मुकदमें ने प्रारम्भ से ही एक सार्वजनिक रूप धारण कर लिया था। पंजाब में आर्य समाज और सनातन धर्म सभा में जो विचार संघर्ष वर्षों से चल रहा था यह उसकी पराकाष्ठा थी। दोनों ओर बड़ा जोश था। सम्मन मिलने पर स्वामी जी अपने वकील भगतराम के साथ न्यायालय में उपस्थित हुए जो उनके साले भी थे और मित्र भी। पहली पेशी में पं. गोपीनाथ की गवाही होने वाली थी। स्वामी जी के वकील ने उनसे पूछा- "मुन्शीराम जी, कोई मसाला भी है या नहीं। जिरह में क्या पूछा जायेगा?" स्वामी ने उत्तर दिया- "भाई, मसाला तो कुछ भी नहीं, एक ईश्वर का भरोसा है। चलो कोई न कोई रास्ता निकल आयेगा।"

दोनों खाली हाथ अदालत में जा पहुँचे। पं. गोपीनाथ को अपनी जीत का दृढ़ निश्चय था। वे शेर की तरह छाती ताने हुए आए और अपना बयान स्पष्ट शब्दों में दिया। इतने में लंच का समय हो गया। अदालत उठने की तैयारी करने लगी और रायजादा भगतराम इस्तगासे के बयान पर दृष्टि गड़ाकर देखने लगे कि लंच के बाद क्या जिरह की जाएगी। आगे जो हुआ वह अकल्पनीय और अद्‌भुत था। स्वामी जी पीठ पीछे हाथ रखे खड़े थे कि इतने में उनके हाथ को किसी ने छुआ और कोई चीज पकड़ाई। स्वामी जी ने उस चीज को पकड़ने के लिए हाथ फैलाया तो किसी ने कागजों का एक पुलिन्दा उनके हाथ में दे दिया। उन्होंने यह समझकर कि किसी अखबार की फाइल होगी, उसे ले लिया। स्वामी जी ने उसे देखा तो दंग रह गए। प. गोपीनाथ की बदचलनियों के सबूतों का ढ़ेर उनके सामने पड़ा था। जिसे स्वामी जी ने अदालत में सबूत के तौर पर प्रस्तुत कर दिया, जिसके कारण स्वामी जी पं. गोपीनाथ द्वारा दायर किए गए मानहानि अभियोग में सम्मानपूर्वक विजयी हुए। यदि मेरा अनुमान सही है तो 1898 में 26 से 30 नवम्बर तक बच्छोवाली आर्य समाज में "वेद किन ग्रन्थों का नाम है" विषय पर जो शास्त्रार्थ जिस पं० गोपीनाथ साथ हुआ था वो गोपीनाथ भी वही है जिसने स्वामी जी के विरुद्ध मानहानि का अभियोग दायर किया था तथा उपरोक्त विषय में हुए शास्त्रार्थ में भी स्वामी जी ने इन्हें पराजित किया था।

स्वामी जी ने शुद्धि आन्दोलन चलाया हुआ था जिससे महात्मा गाँधी सहमत नहीं थे। परिणामस्वरूप दोनों के रास्ते अलग हो गये; उसके बावजूद दोनों महापुरुषों का एक दूसरे के प्रति आदर भाव बना हुआ था। स्वामी जी का शुद्धि का कार्य अपने चरम पर था। इस बीच एक घटना हुई जिसने स्वामी जी के बलिदान की नींव रख दी थी। कराची (वर्तमान पाकिस्तान का शहर) से असगरी बेगम नाम की महिला स्वामी जी के पास आई और उसने बच्चे व भतीजे समेत वैदिक धर्म में दीक्षित होने की इच्छा व्यक्त की। स्वामी जी ने उसकी इच्छा के अनुसार शुद्ध करके उसका नाम शान्ति देवी रख दिया; यह घटना 25 मार्च 1926 की है। शुद्ध होने के बाद मुस्लिम समाज में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष

रूप से विरोध के स्वर फूटने लगे तथा शान्ति देवी के पिता और पति दिल्ली आए और उससे पुनः इस्लाम स्वीकार करने का आग्रह किया जिसे शान्ति देवी ने सिरे से खारिज कर दिया। इससे बौखलाए पति अब्दुल हलाल ने शान्ति देवी, स्वामी जी व इन्द्र विद्यावाचस्पति जी समेत कईयों पर अभियोग दायर कर दिया। कुछ दिनों बाद सभी आरोप मुक्त कर दिए गए। लेकिन इस घटना ने 23 दिसम्बर 1926 को घटने वाली दर्दनाक घटना की नींव रख दी। इस घटना का खलनायक अब्दुल रशीद था जिसने मजहबी जुनून में अन्धा होकर एक महानात्मा को, कल्याण मार्ग के पथिक को, महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त को, दलितों के उद्धारक को, समाज सुधारक को, वेदों के प्रचारक-प्रसारक को, शास्त्रार्थ महारथी को, सर्वमेध यज्ञ के होता को, गुरुकुल के सफल आचार्य को, शान्ति-क्रान्ति के सन्देशवाहक को, आर्ष शिक्षा प्रणाली के सजग प्रहरी को, कुशल वक्ता व कुशल लेखक को, स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक को, महर्षि दयानन्द सरस्वती के आर्य राष्ट्र निर्माण के स्वप्न को साकार करने में अहर्निश प्रयत्नशील को, अदम्य साहस व धैर्य के प्रतीक को, त्याग व तप की मूर्ति को, धुन के धनी को, भारतीय संस्कृति के संवाहक को, देशभक्त को और सत्याग्रह के सफल नायक को हमसे छीन लिया। आर्य समाज के प्रचार-प्रसार में स्वामी जी का योगदान स्वर्णाक्षरों में सदैव-सदैव के लिए अंकित है।

23 दिसम्बर स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान दिवस है। हम आर्यों के लिए यह शौर्य दिवस है, हम आर्यों के लिए यह दिन "कृतज्ञता प्रकट दिवस" है। हम आर्यों के लिए यह दिवस प्रेरणा दिवस है, स्मृति दिवस है। उनके जीवन का प्रारम्भिक काल हमें यह प्रेरणा दे रहा है कि मनुष्य में यदि दृढ़ इच्छाशक्ति है तो वह जीवन के भयंकर से भयंकर संक्रमण काल से निकल सकता है। उनके जीवन के मध्यकाल से हमें यह प्रेरणा मिलती है-

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

अर्थात् धीर पुरुष चाहे मौत आज हो या युग के बाद हो, न्याय पथ से अपने कदम को कभी भी पीछे नहीं हटाते हैं। उनके जीवन का अन्तिम काल हमें कर्मवीरता की, धर्मवीरता की, शूरवीरता की, गम्भीरता की, धीरता की, उदारता की, सामाजिकता की और आध्यात्मिकता की प्रेरणा देता है। उनका जीवन हम सबके जीवन के मार्गदर्शन के लिए प्रेरणा देने वाली घटनाओं का विस्तृत दस्तावेज है।

एक सज्जन पूछने लगे- "आप श्रद्धानन्द जी को आध्यात्मिक भी कह रहे हैं और राजनैतिक भी। एक व्यक्ति में दो विपरीत धारा एक साथ कैसे रह सकती हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि आप कृतज्ञता अथवा श्रद्धाभाव के कारण भावों के अतिशय प्रवाह में बह गये हों?" मैंने उन्हें उत्तर देते हुए कहा कि कृतज्ञता तो अवश्य है लेकिन भावों का अतिशय प्रवाह बिल्कुल नहीं है। स्वामी श्रद्धानन्द जी की आध्यात्मिकता और राजनीति दोनों ही आत्मनिर्माण और राष्ट्रनिर्माण के माध्यम थे। उनकी आध्यात्मिकता उनके राजनैतिक जीवन और राजनैतिक कार्यक्षेत्र की कवच थी, जिससे कि उनके राजनैतिक जीवन में बल का, हिंसा का, अन्याय का, पक्षपात का, अधर्म का, असत्य का, स्वार्थ का, लोभ का, द्वेष का और शत्रुता का प्रवेश न हो सके। राजनीति उनके लिए स्वार्थसिद्धि का हथकण्डा नहीं थी अपितु राष्ट्रहित का एक सशक्त माध्यम थी वे अपनी राजनीति पर धर्म और आध्यात्मिकता का अंकुश रखते थे। उनकी राजनीति निरंकुश नहीं थी। इसलिए मैं कहता हूँ कि उनका विराट् व्यक्तित्त्व, आध्यात्मिकता और राजनीति का अद्भुत सङ्गम था। राजनीति स्वामी जी की निर्बलता नहीं अपितु शक्ति थी। अन्त में कल्याण मार्ग के पथिक को, अमर हुतात्मा को, निर्भीकता की बेमिसाल मिसाल को, वेदभक्त, देशभक्त और ईश्वर भक्त को अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि देते हुए प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि हम सभी आर्यजनों को श्रद्धानन्द की श्रद्धा, श्रद्धानन्द की भक्ति, श्रद्धानन्द की धीरता, वीरता और गम्भीरता मिले, जिससे हम ऋषि के **"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"** के स्वप्न को साकार कर सकें। ❑❑

मन्त्रार्थ में विशेषता

(उत्तरा नेरूर्कर, मो. ०९८४५०५८३१०)

वेदमन्त्रों के अर्थ करना सरल नहीं, यह तो हम सभी जानते हैं। केवल ऋषि-पद प्राप्त किए हुए जन ही मन्त्रों के सही अर्थ जानते हैं, यह भी हमने जाना है। तथापि हम अपना भी कुछ-न-कुछ प्रयास अवश्य करते ही हैं। इस लेख में मैनें इस दिशा में अपनी एक खोज का वर्णन किया है।

ऐसी सामान्य मान्यता है कि प्रत्येक वेदमन्त्र के अर्थ, देवता और प्रकरण से निर्धरित होते हुए, अपने में पूर्ण होते हैं। मन्त्र की देवता मन्त्र के विषय को निर्धरित करती है। अनेक बार पूरे सूक्त की एक ही देवता होती है, अर्थात् उस सूक्त के सभी मन्त्र एक विषय में बद्ध होते हैं। प्रकरणानुसार, मन्त्र का पूर्वापर मन्त्रों से सम्बन्ध हो सकता है, अथवा वे स्वतन्त्र भी हो सकते हैं। सम्बन्ध से यहां तात्पर्य है कि अगला मन्त्र पूर्व मन्त्र के विषय को आगे बढ़ाता है। सम्भव है कि दो-तीन पदों की अनुवृत्ति भी अगले मन्त्र में हो, तथापि वह अपने में सम्पूर्ण ही होता है। ऐसा नहीं जाना जाता कि किसी एक मन्त्र के अर्थ अपने में पूर्ण न हों, वह अन्य मन्त्र पर किसी प्रकार अर्थपूर्ति के लिए निर्भर हो। इसके विपरीत, मैंने पाया है कि कुछ मन्त्र अपने में अधूरे होते हैं; उनको समझने के लिए उनको पूर्व या अगले मन्त्र से जोड़ने की आवश्यकता पड़ती है। नीचे मैं इस कथन के प्रमाणरूप दो उदाहरण दे रही हूं। प्रसिद्ध यजुर्वेद का चालीसवां व अन्तिम अध्याय ईशोपनिषद् रूप में भी जाना जाता है। उसका दूसरा मन्त्र देखिए-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥
यजु० ४०।२ **देवता : आत्मा**

अर्थात् कर्म करते हुए, हे मनुष्य! जीवात्मा! सौ वर्ष जीने की इच्छा कर। इस प्रकार, और किसी अन्य प्रकार से नहीं, तुझ नर में कर्म लिप्त नहीं होगा, अर्थात् कर्मफल की इच्छा प्रबल नहीं होगी, उसका लोभ नहीं होगा।

अब इस मन्त्र के अर्थ ध्यान से देखिए। मन्त्र दो कार्य करने का उपदेश देता है- मरण-पर्यन्त कर्म करते रहने का और सौ वर्ष जीने की इच्छा करने का। फिर कर्म जीव में लिप्त नहीं होगा - ऐसा उपदेश है। सो, क्या कर्म करने से कर्मफल की इच्छा नहीं रहेगी? नहीं, यह तो सामान्य अनुभव का उल्टा हुआ - जीव फल की कामना करते हए ही कर्म करता है और कर्म करने पर उसके फल की लालसा जीव में और बढ़ जाती है! तो क्या सौ साल जीने से कर्मफल की इच्छा नहीं रहती ? हम कह सकते हैं कि सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करने वाला मनुष्य संयम से जीयेगा। वह संयम मनुष्य को अतियों से बचाता हुआ, उसको अत्यधिक फल की लालसा से भी कुछ सीमा तक बचा सकता है। परन्तु केवल इसी प्रकार से मनुष्य कर्म से अलिप्त नहीं हो सकता ! मन्त्र को समझने में असफल होने पर, अब हम पूर्व मन्त्र देखते हैं -

ईशा वास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्यतेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥
यजु० ४०।१॥ **देवता : आत्मा**

इस जगत् में जो कुछ परिवर्तनशील है (अर्थात् सभी कुछ), वह सब परमेश्वर से व्याप्त है। इस कारण से इस जगत् के भोगों को त्याग से भोग, किसी वस्तु का लालच मत कर, क्योंकि अन्ततः यह धन किसका है?! अर्थात् सम्पूर्ण जगत् ही परमात्मा का है, तेरा कुछ भी नहीं, ऐसा मान कर भोग कर।

यदि हम इस मन्त्र के उपदेश पर विचार करें, तो हमें सरलता से विदित होगा कि यह विरक्ति के लिए उपदेश है, और सभी शास्त्र इस विषय में एकमत हैं कि विरक्त होकर जो कर्म किया जाता है, जिसमें फल की आशा नहीं की जाती, वही कर्म सर्वश्रेष्ठ है। योगदर्शन में महर्षि पतञ्जलि कहते हैं–

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः॥ (योग० २।१२)

अर्थात् अभ्यास और वैराग्य से चित्त की प्रक्रियाओं का निरोध होता है। वैराग्य का निरूपण करते हुए वे कहते हैं– **दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्॥** (योग० २।१५)

अर्थात् जो इन्द्रियों के विषय दीख रहे हैं, अथवा जो सुन कर जाने गए हैं, उन सब के प्रति विशेष प्यास को वश में करने को वैराग्य कहते हैं। जब मनुष्य में विषयों के लिए तृष्णा नहीं रहेगी, तब उसको कर्म करते समय फल की आशा भी नहीं रहेगी। उसे फल मिले या न मिले, उसे उसमें कोई रुचि नहीं रहेगी। हम निष्काम भाव से जब कर्म करते हैं तो केवल परमात्मा के आदेशानुसार कर्म करते हैं, केवल अपना कर्त्तव्य कर्म करते हैं। फिर फल का कोई विशेष अर्थ नहीं रह जाता, अर्थात् कर्म अपने फल द्वारा हमसे लिपट नहीं जाता। यही अर्थ है **'न कर्म लिप्यते नरे'** का।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने दूसरे मन्त्र में मन्त्रोक्त 'कर्म' की व्याख्या की– **"अधर्म्यमवैदिकं मनोरथसम्बन्धि कर्म"**, अर्थात् जो अधार्मिक, अवैदिक, मनोरथयुक्त कर्म हो, वह। ये विशेषण जो उन्होंने जोड़े, वे इस पहले मन्त्र से ही आए हैं, विशेषकर 'मनोरथसम्बन्धि'। मनुष्य का प्रयोजन कर्म से नहीं होता, अपितु उसके फल से होता है। वह प्रयोजन ही 'मनोरथ' कहलाता है। यह प्रथम मन्त्रोक्त त्याग भावना के विपरीत है। इस प्रकार महर्षि ने अपने मन से अथवा अपने 'ऋषित्व' के कारण ये पद नहीं जोड़े, अपितु पूर्व मन्त्र से मिलाकर लिखे हैं। हाँ, पूर्व मन्त्र से जोड़ने में उनका अवश्य ऋषित्व है।

दोनों मन्त्र मिलाकर अर्थ निकला– इस संसार का प्रत्येक कण परमात्मा से ओत-प्रोत है; ओत-प्रोत ही नहीं, उसी का धन है, वह सब वस्तुओं का ईश्वर है। तुमको तो जैसे किराए पर मिला है! इसलिए किसी भी सांसारिक वस्तु का लोभ न करते हुए, सर्वदा अपना कर्त्तव्य कर्म करते रहो। केवल इस प्रकार से तुम्हारी कर्मफल की इच्छा न्यून रहेगी और तुम सुखी रहोगे। साथ-साथ सौ वर्ष तक जीने की कामना करते हुए, अपनी आयु को दीर्घ करने के लिए सभी प्रयास करो, अर्थात् इतना भी विरक्त न हो जाओ कि जीवन से विमुख ही हो जाओ। तुम्हारे कर्म निरर्थक नहीं हैं, ऐसा जानो।

यहां जो दूसरे मन्त्र का 'कर्म' है, उसमें 'एवं = इस प्रकार' पहले मन्त्र के 'त्यक्तेन भुञ्जीथाः= त्याग/विरक्ति से भोगो' को कह रहा है। अपने आप में दूसरे मन्त्र के इन पदों का कोई अर्थ नही बनता, और पहले मन्त्र का उपदेश अपने में समाप्त नहीं होता। इसलिए यहां कुछ पदों की अनुवृत्ति मानने से काम नहीं चल रहा – यहां दोनों मन्त्रों को पूर्णतया एकसाथ पढ़ने से ही काम बन रहा है।

इस प्रकार अर्थों के संयुक्त होने से यह निकला कि पहला व दूसरा मन्त्र हम को एक-साथ पढ़ना चाहिए – पहले मन्त्र के अर्थ वहीं पर समाप्त नहीं होते, अपितु दूसरे मन्त्र से जुड़ते हैं। दूसरे मन्त्र के तो अर्थ ही ठीक से नहीं बनते जब तक उसे हम पूर्व मन्त्र के साथ नहीं जोड़ते। अब देखिए ऋग्वेद के पहले मण्डल के पहले सूक्त के इस मन्त्र को–

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्।
वर्धमानं स्वे दमे॥ ऋग् १।१।८॥

देवता : अग्निः

इसके शाब्दिक अर्थ इस प्रकार हैं– अहिंसक

मार्गों के प्रकाश करने वाले को, मोक्ष-पद का संरक्षण करने वाले को, (ज्ञान का) प्रकाश करने वाले को, अपने शान्तियुक्त पद में बढ़े हुए को।

इस वाक्य में न तो कर्ता है, न क्रिया; केवल कर्म का निरूपण है। स्पष्टत:, यह वाक्य अधूरा है। इसलिए महर्षि दयानन्द ने इसकी व्याख्या में जोड़ा- वयं (ईदृशं) परमेश्वरं नित्यमुपैमिसि- उपर्युक्त गुणों वाले परमेश्वर के हम नित्य निकट जाएं, अर्थात् उपासना करें। सो, ये शब्द उन्होंने अपनी रुचि अथवा पूर्वज्ञान के अनुसार नहीं जोड़े, अपितु इनका स्रोत पूर्व मन्त्र है। देखिए -

उप त्वा अग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि ॥ ऋग् १।१।७॥
देवता : अग्नि:

अर्थात् हे ज्ञानप्रकाशक अग्ने! विशेष ज्ञान के विशेष प्रकाश के लिए हम नमन करते हुए (पूर्णतया समर्पण भाव से), बुद्धि व कर्म द्वारा, दिन-रात (नित्य प्रति) आपके समीप भली प्रकार आते हैं।

यहां 'त्वा अग्ने दोषावस्त: उप आ इमसि' को लेकर ही महर्षि ने "वयं (ईदृशं) परमेश्वरं नित्यमुपैमसि" कहा। यह स्पष्ट हो जाने पर, अब हम दोनों मन्त्रों के अर्थ एक साथ देखते हैं- हे सर्वप्रकाशक परमेश्वर! तुम अहिंसक ज्ञान-मार्गों को प्रकाशित करते हो। स्वप्रकाशित होते हुए, तुम ऋतु= मोक्ष के पद की अथवा संसार के प्राकृतिक नियमों की रक्षा करते हो। उस मोक्ष पद में तुम मुक्तात्मा के सामने जैसे और भी बढ़ जाते हो- आत्मा को आपका विराट् स्वरूप दिखने लगता है। परमात्मा तो अपरिणामी हैं; सो, उनके घटने-बढ़ने का कोई अर्थ नहीं है; जीवात्मा को ही उनके स्वरूप में बढ़ोतरी दिखने लगती है। जब हम पूर्व मन्त्र को यहां जोड़ते हैं, तभी हम समझ पाते हैं कि यह मुक्तात्मा के लिए कहा गया है, क्योंकि उपासना (उप आ इमसि= पूर्व मन्त्र) के सफल होने पर जो आत्मा की अनुभूति है वह वर्धमान होते हुए परमात्मा (वर्धमानं स्वे दमे, आदि- पश्चात् मन्त्र) का चित्र है। आगे- आपके इन गुणों को जानते हुए, हम अत्यन्त विनम्र भाव से, उस मुक्ति-पद की अभिलाषा करते हुए, अपनी प्रज्ञा द्वारा, दिन-रात आपकी उपासना करते हैं, आपके समीप आकर बैठते हैं।

थोड़ा यहां अर्थ में विशेषता है, वह इस प्रकार- जैसा हमने पूर्व भी देखा है, वैदिक मन्त्रों में प्रार्थना के साथ-साथ प्रेरणा भी होती है। इस प्रकार यहां प्रेरणा है कि मुमुक्षु को ऐसा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए जो हिंसा से परे हो (अध्वराणाम्)। उसे प्राकृतिक नियमों- भौतिकी, रसायनशास्त्र, जन्तुशास्त्र, आदि, का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। (ऋतस्य)। अर्थात् इन दो मन्त्रों में जीवात्मा के लिए विज्ञान प्राप्त करने का और उससे प्राप्त प्रज्ञा से परमात्मा को प्राप्त करने का उपदेश है। यह अर्थ मन्त्रों को पृथक्-पृथक् पढ़ने से नहीं निकलता, दोनों मन्त्रों को एक-साथ पढ़ना अत्यावश्यक है। दूसरे मन्त्र के अपूर्ण स्वरूप से ही हमें संकेत मिल जाता है कि यहां कुछ और जुड़ना है।

इन उदाहरणों से प्रमाणित हो जाता है कि वेदमन्त्रों को सर्वदा अकेले नहीं पढ़ना चाहिए- कभी-कभी दो या उससे अधिक मन्त्रों को संयुक्त रूप में पढ़ना होता है, तभी तात्पर्य सम्पूर्णतया उजागर होता है। बिना ऐसा किए, ऋषियों की व्याख्याएं पढ़ते हुए, हमें कई बार ऐसा प्रतीत हो सकता है कि उन्होंने बहुत सारे शब्द अपनी ओर से जोड़ दिए हैं, जिसको हम उनके ऋषित्त्व का परिचायक समझ बैठते हैं। इन स्थलों में वस्तुत: हमारे लिए आगे-पीछे के मन्त्र देखना आवश्यक है। तभी हम मन्त्रोपदेश को सम्पूर्णतया समझ सकते हैं।

❑❑

शताब्दी लेखमाला

आर्यसमाज नया बांस के इतिहास की झाँकियाँ

(राजेन्द्र 'जिज्ञासु', अबोहर, मो.- ९४१७६४७१३३)

मैं आर्य समाज नया बांस से सन् 1952 से जुड़ा हुआ हूँ। अब जीवन की सांझ में भागदौड़ का युग तो गया अन्यथा मैं जब भी सामाजिक कार्यों के लिये दिल्ली आता था तो नया बांस समाज में ही रुका करता था। अब आयु के इस मोड़ पर सीढ़ियाँ चढ़ना कठिन है सो आर्यसमाज नया बांस में नहीं रुकता तथापि जब दिल्ली जाना होता है तो अपने प्रेमी आर्य बन्धुओं को **आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट** और **गोविन्दराम हासानन्द** की दुकान पर सम्पर्क करने के लिये कहता हूँ। मैं आर्यसमाज नया बांस का बहुत ऋणी आर्य सेवक हूँ।

आर्य समाज नया बांस की शताब्दी:- आर्यो! अपने अरमानों को गर्माने के लिए आर्यसमाज नया बांस दिल्ली के शताब्दी पर्व से हम सबको जुड़ना होगा। इस समाज के मन्दिर का नींव पत्थर देश धर्म के लिये तिल-तिल जलने वाले आर्य नेता पूज्य भाई परमानन्द जी ने रखा था। इस शताब्दी लेखमाला में हम सबसे पहले महाबलिदानी भाई परमानन्द जी का ही एक प्रसंग देते हुए गौरव अनुभव कर रहे हैं।

मेरे लिये टांगा क्यों लाये?:- आर्यसमाज नया बांस के उत्सव पर पूज्य भाई जी आमन्त्रित थे। उनका स्टेशन पर आर्य जनों ने गर्मजोशी से स्वागत किया। प्लेटफार्म से बाहर निकलने पर भाई जी को टांगे पर बैठने को कहा गया। आर्य बन्धुओं के हठ करने पर देवता स्वरूप भाई जी को टांगे पर बैठना पड़ा तो दर्दीला दिल बोल पड़ा. "मेरे लिये टांगे की व्यवस्था क्यों की? आप उत्सव पर चार-चार, आठ-आठ आने दान माँग कर उत्सव के लिये धन जुटाते हैं। मैं पैदल चलकर समाज मन्दिर पहुँच जाता। मुझे ले जाने के लिये आपने टांगा करके दो आने बर्बाद कर दिये। उस युग में कोई विरला व्यक्ति ही एम.ए. पास होता था।

यह प्रेरक प्रसंग आर्यसमाज नया बांस के एक पुराने मन्त्री के मुख से हम ने कभी सुना था। भाई जी सभासदों की तपस्या-लगन व सेवाभाव को जानते थे। वे सुख-सुविधा भोगी नेता नहीं थे।

आर्योचित व्यवहार:- नया बांस समाज के वर्तमान मन्त्री श्री राजेन्द्र जी के पिता चौधरी विजयसिंह जी पहलवान भी नया बांस समाज के एक माननीय निर्माता थे। खारी बावली में उनका पत्तलों व डूनों का थोक व्यापार था। वह अर्थशुचिता के लिये एक प्रसिद्धि प्राप्त व्यापारी थे। आप तो राजकीय सर्विस से निवृत्त होकर व्यापार के क्षेत्र में उतरे। पहले आपके पिता जी यही धंधा चलाते थे। उनकी साख को खारी बावली में कौन नहीं जानता था? आप एक बार अपने पुत्र बालक विजयसिंह जी को दुकान पर बैठा कर थोड़ी दूरी पर किसी दुकान पर गये। आठ दस वर्षीय विंजयसिंह को कहकर गये, "दुकान का ध्यान रखना। मैं अभी आता हूँ।"

एक वृद्धा माता तभी उनकी दुकान पर पहुँच गई। उसने सात आठ डूने माँगे। बालक विजयसिंह ने डूने उसको पकड़वा दिये। उस माता ने कहा, "कितने पैसे दूँ?"

विजयसिंह भाव ताव क्या जाने? यूँही कह दिया, "एक रुपया।" इतने में विजयसिंह जी के पिताजी दुकान के बहुत निकट पहुँच चुके थे। आपने उस माता को एक रुपया देकर दुकान से निकलते देख लिया। उसे कहा, "बहिनजी! थोड़ा मेरे साथ दुकान पर चलिये।" उसने समझा. यह कुछ और पैसे मांगेगा। उसे लौटने की शीघ्रता थी परन्तु, उनके आग्रह से

चल पड़ी। कर जोड़कर उस वृद्धा से कहा, "मेरा तो एक ही पुत्र है। यह अञ्जान है। यह दुकानदारी क्या जाने। डूनों का मूल्य मात्र चार आने है। बच्चे ने यूँ ही एक रुपया आपसे माँग लिया। इसे क्षमा कीजिये। इसे आशीर्वाद देकर जाओ। मैं पाप की कमाई से इसका पालन-पोषण नहीं करना चाहता। श्री विजयसिंह जी ने यह प्रसंग सुनाकर हमें बताया- "मैंने अर्थ शुचिता का आर्योचित व्यवहार का पहला पाठ अपने पूज्य पिताजी से सीखा था।"

आर्यसमाज अपने ऐसे-ऐसे सपूतों पर जितना भी अभिमान करे थोड़ा है। ईंट-पत्थर के भवनों से इतिहास में मान व स्थान नहीं मिलता। शुद्ध आचरण से व्यक्ति, समाज व देश यशस्वी बनते हैं। चौधरी विजयसिंह जी देश में भ्रष्टाचार के समाचार सुनकर तड़प उठते थे।

सेवक चन्दनसिंह की गौरवपूर्ण कहानियाँ:- आर्यसमाज को पं. लेखराम, स्वामी श्री श्रद्धानन्द जी, महात्मा नारायण स्वामी जी जैसी विभूतियों पर तो अभिमान है। आर्यसमाज को समय-समय पर ऐसे निष्ठावान् पवित्रात्मा सेवक भी मिले जिनके आचरण और आत्मा की शुद्धता पर हम आर्यों को बहुत गौरव। आज बड़े-बड़े राजनेता उन समाज सेवकों के व्यवहार से समाज सेवा के पाठ सीख सकते हैं। उन्हें मात्र Peon समझकर भुला देना एक घृणित सोच है। श्री चन्दनसिंह जी वर्षों तक आर्यसमाज के सेवक रहे। वह सम्भवतः गृहस्थी नहीं थे। हम ने आर्यसमाज के इस तपःपूत के सैकड़ों बार दर्शन किये। आर्यसमाज के निर्वाचित प्रधान, मन्त्री, कोषाध्यक्ष और पुस्तकाध्यक्ष सबका अपना-अपना स्थान व सन्मान था परन्तु, वास्तव में समाज का प्रधान, मन्त्री, कोषाध्यक्ष सबकुछ श्री चन्दनसिंह जी ही थे। इस समाज के प्रधान, मन्त्री, कोषाध्यक्ष तो क्या खारी बावली के सब बड़े-बड़े सेठ श्री चन्दनसिंह जी को आदर की दृष्टि से देखते थे। सब दान उन्हीं के द्वारा आता था। अधिकारियों को, दानदाताओं को श्री चन्दनसिंह की अर्थशुचिता पर अडिग विश्वास था।

श्री चन्दनसिंह को भौंपू लेकर फतहपुरी से दूर-दूर तक कार्यक्रमों की सूचना देते हमने देखा था। वह पण्डित बन गया। कैसे? पुस्तकालय की एक-एक पुस्तक पढ़-पढ़ कर वह नोट्स लेता गया। उसके प्रमाण संग्रह के रजिस्टर हमने खूब देखे थे। शास्त्रार्थ महारथी पं. शान्तिप्रकाश जी एक भारी रजिस्टर से कुछ सामग्री अपने भारी रजिस्टर में उद्धृत कर रहे थे। हमने पूछा, "पंडित जी! यह किसका रजिस्टर है?" बोले, "चन्दनसिंह के रजिस्टर से कुछ महत्त्वपूर्ण प्रमाण अपने रजिस्टर पर उद्धृत कर रहा हूँ। ये शास्त्रार्थों के लिये बड़े उपयोगी व महत्त्वपूर्ण हैं।"

चन्दनसिंह जी स्वाध्याय के बल से पंडित बन गये। पुरोहित बनकर काशी की ओर चले गये। फिर सुना कि संन्यासी बन कर समाज की अथक सेवा की। धन्य था हम आर्यों का प्यारा चन्दनसिंह और धन्य थे हमारे पूज्य पं. शान्तिप्रकाश जी निरभिमानी महाज्ञानी।

आर्यसमाज नया बांस महात्मा चन्दनसिंह स्वामी पर जितना भी अभिमान करे थोड़ा है। हमने तो चन्दनसिंह का पर्याप्त इतिहास सीने में सुरक्षित रख लिया। अब आर्य भाई उनके संन्यासी रूप में नाम की जानकारी भी हमीं से माँगते हैं। हमें वह भूल गया है। कोई झोला उठाकर घर से निकले। अवश्य पता मिल जायेगा।

नया बांस समाज के लाला दीपचन्द जी की अबोहर में धूम मच गई:- यह प्रेरक प्रसंग पहले भी किसी लेख में छप चुका है। बड़ी पुरानी बात है कि लाला दीपचन्द जी को इस सेवक के नया बांस समाज में अपने की सूचना मिली। आपने अपने एक कर्मचारी को समाज मन्दिर भेजकर इस विनीत को

जब समय मिले, मिलने के लिये आग्रह किया। हमें समाज मन्दिर से बाहर निकलते ही उनका सन्देश मिल गया। सन्देशवाहक को कहा, "आध पौन घण्टा तक अवश्य आऊँगा।" श्रद्धानन्द बाजार में अबोहर के एक कृपालु मित्र–जनसंघ के एक प्रतिष्ठित नेता ने पकड़ लिया और कहा, "मेरे साथ वहाँ तक चलिये।"

उन्हें कहा, आपके साथ चलता हूँ। कार्य करके आपको भी थोड़ी दूर तक साथ निभाना होगा। वह मान गये। उनका कार्य जब निपट गया तो बोले, "कहाँ चलना है?"

उन्हें बताया, "यहीं हमारे एक कृपालु, आर्य पुरुष साबुन के बहुत बड़े व्यापारी सेठ हैं। लोग साबुन लेने के लिये पंक्ति में लगे रहते हैं। उनकी साख ही कुछ ऐसी है और विशेष बात यह है कि धर्म ग्रन्थों का उन्हें व्यापक व गहरा ज्ञान है।"

वह लाला दीपचन्द जी की दुकान की ओर इन पंक्तियों के लेखक साथ चल पड़े। मार्ग में मन में एक विचार आया कि यदि वहाँ पंक्ति बनाये ग्राहक नहीं होंगे तो यह क्या सोचेंगे कि जो कुछ भी कहा गया वह सब गप्प थी। ईश्वर की कृपा। लाज रह गई। दुकान पर ग्राहकों की भारी भीड़ थी। लोगों को पंक्तिबद्ध खड़े देखकर वह समझ गये कि कोई विशेष बात है तभी तो इतने लोग बारी–बारी माल ले रहे हैं।

हम दोनों लालाजी के कक्ष में प्रविष्ट हुये तो सेठ दीपचन्द जी ने खड़े होकर जब अत्यन्त प्रेम से नमस्ते कही तो अबोहर के सेठजी पर गहरा प्रभाव पड़ा। यह हमारे आर्यसमाजी सेठ के सौजन्य शिष्टाचार का पहला चमत्कार देखकर वह गद्गद् हो गये। हमें बिठाया। पूछा, क्या लेंगे? दूध, चाय या लस्सी। लस्सी आ गई। यह दूसरा आर्यसमाजी सत्कार का चमत्कार था।

हम लस्सी पीते गये। लाला दीपचन्द जी ने धर्म चर्चा, साहित्य चर्चा छेड़ दी। वेद, दर्शन, उपनिषद्, रामायण, सत्यार्थप्रकाश के प्रमाण किसी सेठ के मुख से ऐसे पहली बार हमारे अबोहर के जनसंघी नेता और सेठ ने सुने तो वह दंग रह गये। अबोहर पहुँचकर अगले दिन से उनके जनता दरबार में जो भी आता उसे लाला दीपचन्द जी से अपनी भेंट का वृत्तान्त बड़े गर्व से सुनाते हुये कहते कि अरे तुम सब खाने–कमाने में ही लगे हो। दिल्ली में सेठ दीपचन्द आर्यसमाजी का व्यापार देखिये और उनके धर्म चर्चा करिये उनके विस्तृत ज्ञान का परिचय पाकर आप चकित रह जायेंगे। एक बात और भी कही, आप लोग तो अपने निजी अथवा पारिवारिक मांगलिक कार्यों में जिज्ञासुजी के भाषण करवाते रहते हो, आपने कभी विनम्रता से मान सम्मान में खड़े होकर उनका अभिवादन भी किया। इधर आपकी अकड़ और उधर दिल्ली के आर्यसमाजी सेठ लाला दीपचन्द जी का बड़प्पन और शान! कई दिन तक वह अपने मिलने वालों को लाला दीपचन्द जी की विनम्रता तथा विस्तृत ज्ञान की कहानी सुनाते रहे।

यह किसी भाषण की, उनके प्रदर्शन की छाप नहीं थी। यह सद्व्यवहार, विनम्रता, स्वाध्याय तथा आचरण की गहरी छाप थी। आर्यत्त्व क्या है यह सारे अबोहर को नया बांस समाज के दानी, ज्ञानी, निरभिमानी लाला दीचपन्द की कहानी सुनकर पता चल गया।

नया बांस समाज के एक प्रधान की एक कहानी:- यह सम्भवतः सन् 1940 की घटना है। हैदराबाद स्टेट के आर्यो ने हल्ली खेड़ में एक विशाल सम्मेलन में आर्य सत्याग्रह के पहले जत्थे के नायक और नया बांस समाज के एक पूर्व प्रधान प्रसिद्ध विद्वान् पं. क्षितीश कुमार जी को आमन्त्रित किया। वह दिल्ली से हैदराबाद पहुँच गये। वहाँ पूज्य पं. नरेन्द्र जी ने उन्हें हल्ली खेड़ जाने वाली बस पर बिठाकर कहा, "आप वहाँ पहुँचे। मैं एक कार्य करके आपके पीछे–पीछे आता हूँ। क्षितीश जी के साथ कोई

शेष पृष्ठ १५ पर

धर्मग्रंथों पर धारणा की चोट

(डॉ० शंकर शरण)

शिकागो विश्वविद्यालय की प्रोफेसर वेंडी डोनीजर की लिखी पुस्तक "द हिंदूज: ऐन अल्टरनेटिव हिस्ट्री" आजकल चर्चा में है। पुस्तक के चर्चा में आने की वजह कोई स्तरीय या शोधपरक लेखन नहीं, बल्कि हिंदू धर्मग्रंथों और आख्यानों के चुने हुए प्रसंगों की व्याख्या काम भाव की दृष्टि से किया जाना है।

उदाहरण के लिए, इस पुस्तक में लिखा गया है कि रामायण में उल्लिखित राजा दशरथ कामुक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे और बुढ़ापे में भी कैकेयी जैसी जवान पत्नी के साथ वह रंगरेलियों में डूबे रहते थे। इसमें लिखा गया है कि कैकेयी के इशारे पर ही राजा दशरथ ने अपने बेटे राम को जंगल में भेज दिया ताकि कोई रुकावट न रहे। पुस्तक के मुताबिक राम और लक्ष्मण दोनों ने ही अपने पिता को कामुक बूढ़ा कहा था। वेंडी ने लिखा है कि जंगल में रहते हुए लक्ष्मण के मन में भी सीता के प्रति कामभावना पैदा हुई थी और राम ने इस बारे में लक्ष्मण से सवाल भी किया था। इसी तरह महाभारत की कथा के बारे में भी वेंडी ने अपने मनमुताबिक व्याख्या दी है। सूर्य देवता ने कुंती के साथ बलात्कार किया, जिससे कर्ण नामक अवैध संतान पैदा हुई।

पुस्तक में भारतीय धर्मग्रंथों के कुछ चुने हुए प्रसंगों की कामुक व्याख्या करके एक "वैकल्पिक" इतिहास लिखने की कोशिश की गई है। यह केवल प्राचीन ग्रंथों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें राजनीतिक घटनाक्रमों को भी कुछ इसी तरह घसीटा गया है। गांधी की रामराज्य की कल्पना को भारत में मुसलमानों और ईसाइयों से छुटकारा पाने और हिंदू राज्य की स्थापना से जोड़ा गया है।

वेंडी ने ऐसा लेखन पहली बार नहीं किया है। हिंदू चिंतन, मनीषा और इतिहास पर वह पिछले तीन दशक से इसी तरह का लेखन करती रही हैं। हमारे बुद्धिजीवियों को भी पश्चिमी भक्ति के कारण पर्याप्त आदर और सम्मान मिलता रहा है। जिस लेखन को किसी अन्य धर्म अथवा मत के लोग घृणा या क्षोभ से देखते हैं उसे पश्चिम के रेडिकल प्रोफेसर एक नई व्याख्या के रूप में सम्मान देते हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसा लेखन यदि इस्लामी प्रसंगों पर कोई करे तो उसे एंटी-मुस्लिम और घोर साप्रदायिक कहकर प्रतिबंधित करने की मांग की जाती है। विडंबना यह है कि यह लोग भी वही होते हैं जो जो हिंदू ग्रंथों और महापुरुषों पर कालिख पोतने का हर तरीके से समर्थन करते हैं। यह कार्य केवल बयान तक सीमित नहीं रहता, बल्कि जुलूस और प्रदर्शन तक किए जाते है। जेम्स लेन की पुस्तक में छत्रपति शिवाजी के गंदे चित्रण का समर्थन करते हुए यही किया गया था।

सच्चाई तो यही है कि वेंडी डोनीजर या जेम्स लेन जैसे लेखक भारत में भी हैं। इतिहासकार डी. एन. झा ने लिखा है कि कृष्ण का चाल-चलन अच्छा नहीं था। साहित्यकार राजेंद्र यादव ने राम को युद्धलिप्साग्रस्त साम्राज्यवादी तथा हनुमान को पहला आतंकवादी तक बताया। रोमिला थापर ने सनातन हिंदू धर्म को नकारते हुए इसे ब्राह्मणवाद घोषित करते हुए व्याख्या दी कि यह निम्न जातियों के शोषण और दमन करने की विचारधारा है।

इधर एक नेता ने उसी भाव से "द्रौपदी" नामक उपन्यास लिखा। ऐसे अधिकाश लेखक हिंदू परिवारों में ही पैदा हुए, लेकिन वास्तव में यह धर्महीन हो चुके लेखक ही हैं। इनका मुख्य लक्ष्य हिंदू धर्म

चिंतन और महापुरुषों को लांछित करके नाम कमाना है। विडंबना यह है कि इन सबको भारत में मान-सम्मान भी मिलता रहा है। यह एक सच्चाई है कि आजाद भारत में हिंदू मनीषा के साथ दोहरा अन्याय होता रहा है। वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों को उतना सम्मान नहीं मिल पाया जितना मिलना चाहिए था। यदि इन्हें कुरान, बाइबिल की तरह धर्म-पुस्तक माना गया होता तो इस तरह घृणा फैलाने का दुस्साहस शायद ही कोई करता। तब राम, कृष्ण को केवल ईश्वरीय आदर दिया जाता, जैसा कि पैगंबर मुहम्मद या ईसा-मसीह को दिया जाता है।

उपनिषद दर्शनशास्त्र का विश्वकोष है, किंतु भारत में दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी अरस्तू, काट, मॉर्क्स, फूको, देरिदा आदि को ही पढ़ता है। महाभारत राजनीति और नैतिकता की अद्भुत पुस्तक होने के बावजूद औपचारिक शिक्षा से बहिष्कृत है। यह सब "धर्मनिरपेक्षता" के नाम पर किया जाता है। तर्क दिया जाता है कि यदि इन्हें पाठ्यक्रमों का हिस्सा बनाया जाएगा तो बाइबिल, कुरान, हदीस को भी शामिल करना पड़ेगा।

जब वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, नीतिशतक को धर्मपुस्तक का आदर देने की बात हो तो इन्हें गल्प साहित्य मानकर मनमाने आलोचना का शिकार बनाया जाता है। अपनी मूल्यवान थाती का ऐसा निरादर शायद ही दुनिया में कहीं और हुआ हो। भारत में हिंदू ग्रंथों के साथ हो रहे इस दोहरे अन्याय को ईसाइयत के उदाहरण से अच्छी तरह समझा जा सकता है। सुपरस्टार के रूप में जीसस क्राइस्ट और द विंसी कोड जैसे उदाहरणों से स्पष्ट है कि यूरोपीय अमेरिकी समाज बाइबिल और ईसाई कथा-प्रसंगों की आलोचनात्मक व्याख्या सहता है, साथ ही ईसाइयत का पूरा चिंतन, चर्च और वेटिकन के विचार-भाषण-प्रस्ताव आदि यूरोप की शिक्षा प्रणाली का अभिन्न अंग भी हैं और वह औपचारिक शिक्षा की प्रणाली से बाहर नहीं है।

ईसाइयत संबंधी धर्मशिक्षा पश्चिम में उसी तरह स्थापित हैं जैसे भौतिकी, रसायन या अर्थशास्त्र आदि हैं। इन्हें पढ़कर हजारों युवा उसी तरह वहां के कालेजों, विश्वविद्यालयों से हर वर्ष स्नातक होते हैं जैसे कोई अन्य विषय पढ़कर। तदनुरूप उनकी विशिष्ट पत्र-पत्रिकाएं, सेमिनार सम्मेलन आदि भी होते हैं। ईसाइयत संबंधी विमर्श, शोध, चिंतन के अकादमिक जर्नल्स आक्सफोर्ड और सेज जैसे प्रमुख अकादमिक प्रकाशनों से प्रकाशित होते हैं। ऐसा इक्का-दुक्का नहीं, बल्कि अनगिनत होता है।

यदि यूरोपीय जगत ईसा और ईसाइयत की कथाओं और ग्रंथों की आलोचनात्मक व्याख्या को स्थान देता है तो साथ ही धर्मग्रंथों के संपूर्ण अध्ययन को एक विषय के रूप में सम्मानित आसन भी देता है। स्वयं वेंडी डोनीजर शिकागो विश्वविद्यालय के 'डिविनिटी स्कूल' में प्रोफेसर हैं। हालांकि भारतीय विश्वविद्यालयों में ऐसा कोई विभाग ही नहीं होता।

भारत में इसके ठीक विपरीत धर्म और उसके नाम पर सभी हिंदू ग्रंथों और चिंतन के अगाध भंडार को औपचारिक शिक्षा से बाहर रखा गया है। यहां यह जानने योग्य है कि मैक्सवेबर जैसे महान विद्वान ने भी भगवद्गीता को राजनीति और नैतिकता के अंत:संबंध पर पूरे विश्व में एकमात्र सुसंगत पाठ्यसामग्री माना है, किंतु क्या मजाल कि भारत में राजनीतिशास्त्र के विद्यार्थियों को इसे पढ़ाने की अनुमति दी जाए। यह तो एक उदाहरण है।

वास्तव में यहूदी, ईसाइयत और इस्लाम की तुलना में हिंदू चिंतन कहीं ज्यादा गहन है। समाज विज्ञान का कोई भी ऐसा विषय नहीं है जिसके समुचित अध्ययन के लिए हमें हिंदू ग्रंथों से मदद न मिल सके। इस सबके बावजूद समाज विज्ञान विभागों में या फिर अलग विधा के विषय के रूप में भारत में कोई अकादमिक संस्थान या स्थान नहीं बनाया गया है।

यही कारण है कि गीता प्रेस, गोरखपुर के संपूर्ण कार्यो को अकादमिक जगत उपेक्षा से देखता है। मानो वह आधुनिक समाज से कटे हुए वृद्ध पुरुषों-महिलाओं और अशिक्षितों के पढ़ने के लिए सतही व अंधविश्वासी चीजें हों।

यदि इन बातों पर सगग्रता में विचार किया जाए तो पाएंगे कि आजाद भारत में हिंदू मनीषा के साथ किस तरह दोहरा अन्याय हुआ है। यहां यह कहना गलत न होगा कि ऐसा करने के लिए आजाद भारत के शासकों और नीति-निर्माताओं ने जनता से कभी कोई जनादेश तो लिया नहीं है। यह सब चुपचाप एक चिरस्थापित औपनिवेशिक मानसिकता के तहत अभी तक चल रहा है। भारतीयों पर यह मानसिकता हजारों वर्षो की गुलामी में विदेशी शासकों ने जबरन थोपी। जिसमें हर स्वदेशी चीज खराब मानी जाती है और हर पश्चिमी चीज अच्छी।

पश्चिमी लेखक वेंडी डोनीजर को सम्मान और भारतीय हनुमान प्रसाद पोद्दार का बहिष्कार इसका स्पष्ट प्रमाण है।

विशेष- गीता प्रेस का कार्य विशेष रूप से पुराणों तक सीमित है। जबकि आर्यसमाज द्वारा वैदिक वांग्मय के सम्बन्ध में पिछले 140 वर्षो में हजारों पुस्तकों का लेखन हुआ है। स्वामी दयानन्द के वेद भाष्य, पंडित भगवत दत्त के वैदिक वांग्मय के इतिहास, पंडित युधिष्ठिर मीमांसक जी के वैदिक व्याकरण सम्बंधित दृष्टीकोण को आज किसी विश्वविद्यालय में नहीं पढ़ाया जाता। क्यूंकि शिक्षा का पाठयक्रम साम्यवादियों द्वारा निर्धारित होता है। यह एक प्रकार का सुनियोजित षड्यंत्र है।

रामायण के सभी पात्र अपने अपने क्षेत्र मे अद्वितीय हैं। भगवान श्रीराम जी चाहते तो माता सीता जी को भूल कर दूसरा विवाह कर सकते थे। माता सीता जी चाहती तो रावण के महलों में सुख से रह सकती थी। भगवान लक्ष्मण जी के तप त्याग और आचरण का उदाहरण विश्व में दूसरा नहीं है। माता सीता के ऊपरी आभूषणों को गहरी दृष्टि से नहीं देखा। भगवान हनुमान जी रावण के महल में वस्त्रहीन स्त्रियों को देख कर विचलित नहीं हुए।

❑❑

पृष्ठ १२ का शेष

स्थानीय कार्यकर्त्ता नहीं था। वहां बस अड्डा के समीप ही आर्य महासम्मेलन रखा गया।

क्षितीश जी वहाँ वेदी पर जाकर बैठे ही थे कि आपने एक कार सम्मेलन स्थल के पास आकर खड़ी होती देखी। उस कार में से केवल दो व्यक्ति बाहर निकले। एक पं. नरेन्द्र जी और दूसरा कार चालक। पण्डित जी वेदी पर आकर क्षितीश जी के पास बैठ गये। क्षितीश जी ने बड़े रोष से कहा, "पण्डित जी! आप दो जन कार में आये हैं। मैं कार में बैठता तो क्या टायर घिस जाते या फट जाते अथवा मुझसे कुछ दुर्गंधि आ जाती।" खरी-खरी पण्डित नरेन्द्र जी को सब सुना दी। पण्डित जी क्षितीश जी को भुजा से पकड़कर बोले, "उठो मेरे साथ वहाँ तक चलिये।"

कार के पास जाकर कार चालक को कहा मिठाई वाला टोकरा बाहर निकालो। वह टोकरा निकाल लाया। कहा, "इसका ढकन खोलो।" उसमें बम्ब था। तब पण्डित जी ने कहा, "आप हम लोगों के लिये जेल में गये। हमारे आगे पीछे गुप्तचर लगे हैं। मार्ग में पकड़े जाते तो न जाने क्या-क्या यातनायें दी जातीं। मैं नहीं चाहता था कि आप इतनी दूर से आकर फिर बम्ब केस में कारागार में दबाये सताये जाते।" क्षितीश जी ने निर्भय होकर मन की बात सच्च-सच्च कह दी और पण्डित जी की परहित ऊँची सोच की भी जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी है। क्षितीश जी से भी यह प्रसंग सुना था। तभी किसी पुस्तक में भी दिया। इतिहास लेखकों ने नया बांस समाज की इस देन को मुखरित कहाँ किया?

❑❑

श्रद्धा और आनन्द का संगम : स्वामी श्रद्धानन्द

(रामनिवास 'गुणग्राहक', चलभाष : ९०७९०३९०८८)

मानव के मनोविज्ञान की गहरी समझ रखने वाले सुधीजन जानते हैं कि संसार का कोई व्यक्ति जानबूझकर अथवा यौं कहें कि अपनी समझ के अनुसार कोई भी काम दु:ख पाने और घाटा उठाने के लिए नहीं करता अन्तर इतना है कि जिन की दृष्टि सांसारिक उपलब्धियों को ही जीवन का प्रथम और अन्तिम लक्ष्य मान लेते हैं, वे छोटी दृष्टि होने के कारण अनजाने में बड़े दु:खों को आमन्त्रित कर डालते हैं। हाँ भई! यह नितान्त सच है कि कोई भी दु:ख बिन बुलाये और कोई भी सुख बिना कमाये हमारे जीवन में प्रवेश कर ही नहीं सकता। इनके बारे में एक बात समझ लेनी होगी कि कुछ सुख ऐसे हैं. जिन्हें हम बिना कमाये, बिना मूल्य चुकाये भी भोग लेते हैं, लेकिन ऐसा नहीं होता कि वो सुख हमें यूँ ही मिल जाते हैं। ऐसे सुखों का मूल्य उधार लिए धन की तरह आगे चलकर चुकाना ही पड़ता है।

जैसे कोई भी परिश्रमी और स्वाभिमानी व्यक्ति सामान्यत: ऋण लेकर जीना नहीं चाहता, ठीक उसी प्रकार से जिनकी दृष्टि लोक-परलोक दोनों को समान रूप से देखने-समझने में समर्थ हो जाती है, वो भाग्यवान् मनुष्य कभी ऐसा उधारी वाला सुख भोगना अच्छा नहीं मानते, जिसका मूल्य बाद में चुकाना पड़े। वे पहले श्रम और साधना के रूप में ऐसी कमाई कर लेते हैं कि जिसके बाद प्राप्त सुख को निश्चिन्त भाव से पूरे हृदय से भोगा जा सके। स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन में ये दोनों रूप स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। मुंशीराम का प्रारम्भिक जीवन नि:संकोच लोक दृष्टि तक सीमित कहा जा सकता है, जिसमें स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के बरेली में सुने व्याख्यानों ने पहली बार एक ऐसी ज्योति जलाई जो उनकी परलोक दृष्टि का मूल कारण बनी। इसी जीवन की लोक समृद्धि, लोक सुखों को सबकुछ मान लेना सोच का अधूरापन है, क्योंकि हमारा जीवन इस जन्म से पूर्व और मृत्यु के पश्चात् भी निरन्तर चलती रहने वाली उस यात्रा की तरह है, जिसमें मृत्यु एक पड़ाव या ठहराव की तरह है तथा जन्म उस पड़ाव से उठ खड़े होकर अगले पड़ाव तक चलते रहने का नाम है।

जब हमारी जीवन यात्रा मृत्यु के पहले और बाद में चलती रहती है तो हमें अपनी दृष्टि, अपनी सोच भी वहाँ तक रखनी ही पड़ेगी। वहाँ तक न देख पाना, वहाँ तक न सोच पाना निश्चित ही हमारी दृष्टि और हमारी सोच का अधूरापन है। कल्पना करो कि सौ किलोमीटर की यात्रा पर निकला पथिक पाँच किलोमीटर तक चलने की योजना और सामान के साथ चल पड़ेगा तो आगे की यात्रा में संकटों और कष्टों का सामना अवश्य करना पड़ेगा।

स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन, जो प्रारम्भ में केवल लोक दृष्टि तक सीमित था, स्वामी दयानन्द की जीवन के अन्तिम पड़ाव (मोक्ष) तक अबाध गति से देखने-सोचने वाली दृष्टि से अनुप्राणित होकर दूर तक देखने-सोचने की सामर्थ्य पाकर जब उस लोक भेदिनी दृष्टि के सहारे आगे बढ़ने लगा तो

शराबी-कबाबी मुंशीराम कुछ ही वर्षों में महात्मा मुंशराम बन गया। देखते ही देखते अपनी अन्त:शक्तियों का विकास करते हुये महात्मा मुंशीराम जब स्वामी श्रद्धानन्द बनकर लोकावतरित हुआ तो उस जीवन में श्रद्धा और आनन्द का सागर हिलोरें लेता हुआ- 'समुद्रात् ऊर्मि मधुमां उदाभर दुपांशुना सममृतत्त्व मानट्' का जीवन्त उदाहरण बन गया। श्रद्धा और आनन्द के उस समुद्र से ऐसी मधुर-रसभरी ऊर्मियाँ=लहरें उठीं कि उन लहरों ने महात्मा मुंशीराम से श्रद्धानन्द तक निरन्तर निखरने, सजने-संवरने वाले आत्मा को चुपचाप-सहज भाव से अमृत पान करा दिया।

सुधी पाठक! जब स्वामी श्रद्धानन्द ने अपनी आत्मकथा लिखने का मन बनाया होगा और उसके नामकरण पर चिन्तन किया होगा तो उनके मन-मस्तिष्क में कई नाम उभर कर आये होंगे। उन सब नामों में 'कल्याण मार्ग का पथिक' नाम उन्हें सर्वाधिक उपयुक्त क्यों लगा होगा? लगता है कि जब उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन से लेकर नौकरी और वकालत वाले दिनों पर दृष्टि डाली होगी, जब ऋषि दयानन्द के उपदेशों और प्रश्नोत्तरों से प्राप्त संचेतना के अंकुरित होते सद्भावों को माता शिवदेवी की बालसुलभ निश्छल सेवा से सजीव होते, सत्यार्थप्रकाश आदि सद्ग्रन्थों के आलोक में पुष्पित-पल्लवित होते हुए तथा गुरुकुल कांगड़ी के निर्माणार्थ किये गए पुण्य प्रयासों के रूप में फूलने-फलते अपनी अन्तर्दृष्टि से देखा होगा। एक-एक कर अपनी सम्पूर्ण लोक-सम्पदा को वैराग्य भाव से लोकहित में समर्पित कर डालने वाली अपनी मन:स्थिति के माधुर्य को पुनर्जीवित करके चखा होगा तो तय कर लिया होगा कि उनका आत्मा निश्चित रूप से 'कल्याण मार्ग का पथिक' ही है।

पथिक है, चल रहा है, साधक है, साधना में लीन है। अपने सभी निर्णय श्रद्धा के सहारे लेता है, श्रद्धा की कोख में सत्य का बीजरोपण करके भगवान् भरोसे रहकर उस सत्य को प्रतिफलित करने के लिए समर्पित श्रम-साधना करने वाला श्रद्धानन्द ही उस श्रद्धा के सुफल आनन्द का उपभोग कर सकता है। श्रद्धानन्द एक नाम नहीं है, श्रद्धानन्द एक सफल जीवन पद्धति है। श्रद्धानन्द एक सफल जीवन-निर्माण विधि है, श्रद्धानन्द निर्विवाद रूप से एक ऐसी जीवन-ज्योति है, जिसके आलोक का अनुकरण करने वाला प्रत्येक मनुष्य श्रद्धा की कोख से जन्मे आनन्द का रसपान कर सकता है।

डी.ए.वी. संस्थान को अपने पावन लक्ष्य से भटकते देखकर व्याकुल-व्यथित और उसका विकल्प खड़ा करने को संकल्पित आत्मा जब गुरुकुल निर्माण के लिए तीस हजार रुपये का धन संग्रह करने का लक्ष्य पूरा करके ही घर में प्रवेश करने का प्रण लेकर चल देता है तो वह अपनी श्रद्धा को सफल बनाने के लिए साधना करता हुआ दिखता है। जब अनायास ही डॉ. अमनसिंह ने उन्हें अपनी कांगड़ी स्थित भूमि गुरुकुल के लिए देने का वचन पूरा किया तो वह स्थिति श्रद्धा के लिए समर्पित उस आत्मा के लिए श्रद्धा के सुफल आनन्द की प्रथम अनुभूति का साक्षात्कार था।

जब एक बार किसी व्यक्ति को अपने समर्पित श्रम का सुफल मिलने लगता है तो उस का हृदय आनन्द की अनुभूति के साथ एक अनूठी आत्मशक्ति के भी दर्शन करता है। वह आत्मशक्ति भविष्य में उसे अधिक संघर्ष के लिये प्रेरित और उत्साहित करके अधिक बड़े काम के लिए समर्थ बनाती है।

आगे चलकर हम देखते हैं कि महात्मा मुंशीराम एक ओर जहाँ जंगली शेर से भिड़ने के लिए उसकी ओर आगे बढ़ते हुए दिखते हैं तो दूसरी ओर उनका वैराग्य उनको अपनी अन्तिम सम्पत्ति को भी गुरुकुल के लिए समर्पित कर देने तक ले जाता है। जब हम एक आचार्य के रूप में उन्हें एक रोगी बालक की वमन (उल्टियों) को हाथों में लेते हुए देखते हैं तो हमें उनका एक वात्सल्य भरा नया ही रूप देखने को मिलता है। साहस, वैराग्य और अपनत्व से भरा मुंशीराम का हृदय संसार के हर संकट और झंझट को बिना झुंझलाहट बड़े सहज भाव से स्वीकारने लगता है और उस पर अन्ततोगत्त्वा विजय पा लेता है तो कहना पड़ता है कि शरीर और संसार का समुचित सदुपयोग वे ही लोग कर पाते हैं, जिनके हृदय में सबके लिए अपनत्त्व भरा है, जो अपनी शारीरिक शक्ति व सांसारिक सम्पत्ति को सर्वकल्याण के लिए समर्पित कर सकते हैं। ऐसे नर पुंगवों के सामने न तो जंगल का हिंसक शेर ठहर सकता है और न चाँदनी चौक पर गोरखों की आग उगलती तीखी संगीनें।

परिस्थितियों ने स्वामी श्रद्धानन्द की कैसी-कैसी परीक्षाएं लीं। गुरुकुल के आचार्यों के साथ आन्तरिक वैचारिक मतभेद, सभा के पदाधिकारियों व वैमनस्य रखने वालों के मिथ्या आरोप, दोनों पुत्रों द्वारा विद्रोही मनोभावों का प्रकटीकरण, गुरुकुल प्रणाली के पुनरुद्धारण से जुड़ी जन-आकांक्षाएं और आशंकाएं, अंग्रेज सरकार की कोप दृष्टि, जीवन साथी के बिछुड़ने का आघात तो वे प्रारम्भिक दिनों में ही भोग चुके थे। जीवन के उत्तरार्ध की बात करें तो देश की राजनीति से जुड़कर देश की स्वतंत्रता के लिए समर्पित सेनानी के रूप में भी उनकी यात्रा संघर्षों की एक नई गाथा के पन्नों की तरह है। दलितोद्धार और शुद्धि कार्य को लेकर महात्मा गाँधी के साथ टकरा जाने वाले स्वामी श्रद्धानन्द कठिन चुनौतियों को कीर्तिकर अवसरों के रूप में बदल डालने वाले महामानव की भूमिका में आ जाते हैं।

जलियांवाला बाग के नर संहार के बाद उसी वर्ष अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन करने का चुनौतीपूर्ण कार्य स्वामी श्रद्धानन्द जी ने जिस कुशलता, नेतृत्त्वक्षमता और जीवटता के साथ सम्पन्न कराया, वह कांग्रेस के इतिहास का सबसे अधिक चमकता हुआ अध्याय है। साम्प्रदायिक सौहार्द के लिए स्वामी श्रद्धानन्द से बड़ा उदाहरण देश के इतिहास में ढूंढ़ना असम्भव जितना कठिन है। दिल्ली की जामा मस्जिद से- **'त्वं हि नः पितावसो.....'** वेदमन्त्र की ध्वनि गुंजाने वाले श्रद्धानन्द सिखों के गुरु के बाग आन्दोलन में भाग लेकर जेल जाते हैं।

इंग्लैंड के प्रधानमंत्री बनने वाले रैम्जे मैक्डानल्ड को स्वामी श्रद्धानन्द में सन्त हीटर और ईसामसीह की छवि दिखती है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर मानते हैं कि स्वामी श्रद्धानन्द सबसे बड़े दलित हितैषी हैं तो पं. मदनमोहन मालवीय उन्हें हिन्दुओं का महान् आदर्श घोषित करते हैं। इस प्रकार स्वामी श्रद्धानन्द तप-त्याग और बलिदान की भट्टी में तपकर निकलने वाले उस महान् आत्मा का नाम है, जो जीवन के प्रारम्भ में लोक दृष्टि तक सीमित रहने के बाद ऋषि दयानन्द की प्रेरणा से जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष तक देख-समझ पाने में सक्षम हुआ तो लोक को परलोक के लिए वार कर सच्चे अर्थों में कल्याण मार्ग का पथिक बनकर श्रद्धा और आनन्द का सजीव आदर्श बना।

❑❑

बुद्धिः पर्यवतिष्ठते

(महात्मा चैतन्यस्वामी, हिमाचल प्रदेश, मो० ९४१८०५३०९२)

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरू॥

(यजु० ३२-१४)

यहां पर प्रार्थना की गई है कि जिस मेधा-बुद्धि के लिए विद्वान् लोग तथा पालन करने हारे माता-पिता आदि, परमात्मा की उपासना करते हैं, उसी मेधा से हे सुपथ-दर्शक परमात्मा! मुझे आज ही मेधावी बना दो। प्रार्थना बहुत ही उत्तम है मगर परमात्मा किसे इस प्रकार की बुद्धि प्रदान करते हैं-

प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधां बृहस्पतिं मतिरच्छा जिगाति। य आङ्गिरसो नमसोपसद्योऽस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः॥

(ऋ० १०-४७-६)

अर्थात् सात प्रकार के धीगुणों को जानने वाले,सत्य को धारण करने वाले और उत्त्म धारणावती बुद्धि वाले वेदज्ञाता मनुष्य को मननशीला बुद्धि अच्छी प्रकार से प्राप्त हो जाती है। ऐसे मतिमान् ज्ञानियों के द्वारा उपासनीय परमात्मा नमन के द्वारा साक्षात्करणीय है। वह हमें अद्भुत और बलवर्धक ऐश्वर्य प्रदान करे। गायत्री महामन्त्र के द्वारा भी परमात्मा से बुद्धि को विकसित करने की ही प्रार्थना की गई है। प्रार्थना के साथ-साथ व्यक्ति को ऐसे उपाय भी करने चाहिए जिनसे बुद्धि का निरन्तर विकास होता रहे।

गीता के अनुसार व्यवसायत्मिका बुद्धि तो एक ही है मगर अव्यवसायी लोगों की बुद्धियाँ अनेक शाखाओं में बंटी होती हैं। व्यवसायात्मिका बुद्धि का भाव है-किसी भी संकल्प को पूरा करने के लिए प्रयत्नशील एकाग्रबुद्धि.....निर्णयात्मकबुद्धि.....। संशयात्मक बुद्धि (Mind) है और निर्णयात्मक बुद्धि (Intellect) है। यही बुद्धि निष्कामकर्मी बनती है.....गीता में 'बुद्धि-योग' का अनुष्ठान् करने की प्रेरणा देते हुए 'युक्त-बुद्धि' की उत्कृष्टता के सम्बन्ध में कहा है-

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः॥

(गी० २-४९)

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥

(गी० २-५०)

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्॥

(गी० २-५१)

अर्थात् 'बुद्धि-योग' (कर्म-योग, निष्काम-कर्म) से 'कर्म' (कर्म-काण्ड, (सकाम-कर्म) बहुत घटिया है। तू 'बुद्धि-योग' (कर्म-योग, निष्काम-कर्म) में शरण ग्रहण कर, फल के हेतु कर्म करने वाले (कर्म-काण्डी, सकाम-कर्मी) कृपण हैं, दीन या निचले दर्जे के हैं....क्योंकि दीन-भाव से फल की याचना करते हैं, भिखमंगे हैं)। 'बुद्धि-युक्त' व्यक्ति पुण्य तथा पाप इन दोनों ही प्रकार के कर्मों की आसक्ति को त्याग देता है इसलिए हे अर्जुन! तू योगी बन जा क्योंकि कर्मों में कुशलता ही योग है। जो बुद्धि-योगी मनीषी और ज्ञानी लोग हैं वे कर्म से उत्पन्न फल की आकांक्षा को त्यागकर जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होकर दु:खरहित स्थिति को प्राप्त करते हैं। ऐसे 'युक्त-बुद्धि' को ही गीता में स्थित-प्रज्ञ कहा गया है-

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थिप्रज्ञस्तदोच्यते॥

दु:खेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्ययते॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाऽशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

यदा सं हरते चायं कूर्मोऽगा। नीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्यं प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

(गी० २-५५से ५८)

हे पार्थ! जब व्यक्ति अपने मन में गति करनेवाली सब कामनाओं को त्याग देता है और जब वह अपने आप से अपने में ही सन्तुष्ट रहने लगता है, तब वह स्थित-प्रज्ञ अर्थात् स्थिर-बुद्धि वाला कहलाता है। जिसका मन दुःखों में उद्विग्न, बेचैन नहीं हो जाता, सुखों में जिसकी लालसा मिट जाती है, जो राग, भय और क्रोध से मुक्त हो जाता है, वह स्थिर-बुद्धि वाला व्यक्ति मुनि कहलाता है। जिसे किसी वस्तु के प्रति स्नेह नहीं, जो शुभ को प्राप्त करके प्रसन्न नहीं होता और अशुभ को प्राप्त करके अप्रसन्न नहीं होता, उसकी प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि दृढ़ता से स्थिर हो गई है। जैसे कच्छुआ अपने अंगों को सब ओर से सिकोड़ कर अपने खोल के अन्दर खींच लेता है, उसी प्रकार जब कोई व्यक्ति इन्द्रियों के विषयों में से अपनी इन्द्रियों को खींच लेता है तब समझो कि उसकी प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि स्थिर हुई। जो बुद्धि व्यक्ति को एकाग्रता के साथ संयुक्त करे वास्तव में हम उसी बुद्धि को श्रेष्ठ कह सकते हैं क्योंकि उसी से व्यक्ति को सुख और शान्ति प्राप्त हो सकती है-

प्रसादे सर्वदुःखानां, हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु, बुद्धिः पर्यवऽतिष्ठते।।

नास्तिबुद्धिरयुक्तस्य, न चाऽयुक्तस्य भावना।
न चाऽभावयतः शन्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।।

इन्द्रियाणां हि चरतां, यन्मनोऽनु विधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां, वायुर्नावमिवाम्भसि।।

तस्माद्यस्य महाबाहो, निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

(गी० २-६५ से ६८)

अर्थात् प्रसन्नता की स्थिति में इस साधक व्यक्ति के सभी दुःखों का क्षय हो जाता है। प्रसन्न चित्त वाले व्यक्ति की बुद्धि शीघ्र ही प्रतिष्ठित हो जाती है। एकाग्रतारहित व्यक्ति को उत्तम बुद्धि और दृढ़-भावना की प्राप्ति नहीं होती है और जिस व्यक्ति की भावना ही दृढ़ नहीं है उसे शान्ति मिलना कठिन है तथा भला शान्तिरहित को सुख कहाँ? विषयों में विचरने वाली इन्द्रियों के साथ जब मन भी लग जाता है तो वह व्यक्ति की बुद्धि को उसी प्रकार हर ले जाता है जैसे जल में वायु नौका को। अतः हे महाबाहो अर्जुन! जिस व्यक्ति की इन्द्रियां विषयों से सब प्रकार से हटाकर वश में कर ली गई हैं, उसी की बुद्धि स्थिर है।

उपनिषद् में इस शरीर को रथ की संज्ञा देते हुए बहुत ही सुन्दर अंलकार बान्धा गया है, जिससे हमें बुद्धि के महत्व का पता भली प्रकार से लग जाता है कि हमारी बुद्धि क्यों सात्विकता से जुड़ी हुई होनी चाहिए। कठोपनिषद् में ऋषि कहते हैं-

आत्मानं रथिनं विद्धि) शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।।

इन्द्रियाणि हयानाहुः विषयांरस्तेषु गोचरन।
आत्मेन्द्रियमनो युक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।।

(तृतीय वल्ली ३, ४)

ऋषि का कथन है कि यह शरीर एक रथ के समान है। रथ में घोड़े जुते हुए होते हैं, घोड़े के लगाम लगी होती है, लगाम को हाथ में लिए सारथि रथ चलाता है। रथ का स्वामी पीछे बैठा होता है। वह स्वयं तो कुछ नहीं करता मगर रथ को वह जिधर चाहता है रथ को उधर ही चलना होता है। यदि घोड़े जिधर चाहें भागने लगें तो रथ की क्या स्थिति होगी यह हर कोई जान सकता है। शरीर रथ है, संसार के विषय वे मार्ग हैं जिस पर रथ को चलना है, इन्द्रियां घोड़े हैं, मन लगाम है, बुद्धि सारथि है, आत्मा इस रथ का स्वामी है। इसलिए आत्मा जिधर कहे उधर बुद्धि को चलना चाहिए, बुद्धि जिधर को कहे उधर मन को लगाम फिरानी चाहिए, मन जिधर मोडे उधर

इन्द्रियों को जाना चाहिए। यदि यह क्रम रहेगा तो आत्मा अपने गंतव्य स्थान पर पहुंचेगा अन्यथा पता नहीं वह किन-किन योनियों में बार-बार भटकता रहेगा... इन्द्रियों रूपी घोड़ों को विषय रूपी मार्गों की ओर जाने से रोकने के लिए मनरूपी लगाम को बुद्धिरूपी सारथि के हाथों में सौंपने की जरूरत है...
.

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्॥

(यजु० ११-१)

इस मन्त्र की व्याख्या करते हुई महर्षि लिखते (ऋ०भा०भू०उपा०) हैं- (युञ्जानः) योग को करने वाले मनुष्य (तत्त्वाय) तत्त्व अर्थात् ब्रह्मज्ञान के लिए (प्रथमं मनः) जब अपने मन को पहिले परमेश्वर में युक्त करते हैं, तब (सविता) परमेश्वर उनकी (धियम्) बुद्धि को अपनी कृपा से अपने में युक्त कर लेता है। (अग्नेर्ज्यो०) फिर वे परमेश्वर के प्रकाश को निश्चय करके (अध्याभरत्) यथावत् धारण करते हैं। (पृथिव्याः) पृथिवी के बीच में योगी का यही प्रसिद्ध लक्षण है।

व्यक्ति को अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए अपनी बुद्धि का सही-सही प्रयोग करना चाहिए। उपरोक्त मन्त्र में कहा गया है कि अपने मन को जो संयत कर लेता है परमात्मा उसकी बुद्धि को अपने में युक्त कर लेता है। मनु महाराज जी ने धर्म के जो दस लक्षण बताए हैं। उनमें से सातवां लक्षण **'धी'** अर्थात् बुद्धि बताया है। बुद्धि के विकास एवं पवित्रता से ही व्यक्ति का चिन्तन देवत्व से परिपूर्ण हो सकता है.... कहा भी गया है-

प्रज्ञामेवाऽऽगमयति, यः प्राज्ञभ्यः स पण्डितः।
प्राज्ञो ह्ययवाप्य धर्माथौं, शक्नोति सुखमेधितुम्॥
उदीरितोऽर्थः पशुनाऽपि गृह्यते, हयाश्च नागाश्च वहन्ति देशिताः। अनूक्तमप्यूहति पण्डितो जनः, परेतिज्ञानफला हि बुद्धयः॥

जो मनुष्य बुद्धिशाली मनुष्यों से बुद्धि को ही प्राप्त करता है वास्तव में वही पण्डित है। बुद्धिमान् मनुष्य धर्म और अर्थ को पाकर सुख को बढ़ा सकता है। प्रकट किया गया अभिप्राय पशु के द्वारा भी ग्रहण कर लिया जाता है, घोड़े और हाथी भी संकेतों के अनुसार चलते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य विना कहे भी अभिप्राय को भांप जाता है। दूसरे के संकेत मात्र से ही अभिप्राय को जान लेना यही बुद्धि का लक्षण है। बुद्धि की महत्ता के बारे में कहा गया है-

मतिरेव बलाद् गरीयसी, तदभावे करिणामियं दशा। इति घोषयतीव डिण्डिमः, करिणो हस्तिपकाहतः क्वणन्॥ प्रज्ञा प्रतिष्ठा भूतानां, प्रज्ञा लाभः परो मतः। प्रज्ञा निःश्रेयसी लोके, प्रज्ञा स्वर्गो मतः सताम्॥

ये याताः किमपि प्रधार्य हृदये, पूर्व गता एव ते। ये तिष्ठन्ति भवन्तु तेऽपि गमने, कामं प्रकामोद्यमाः॥

बुद्धि ही बल से बड़ी है, उस बुद्धि के अभाव में ही बलशाली हाथियों की यह दशा है अर्थात् महावत उन्हें अपने अंकुश में रखता है....मानो इसी बात को हाथी पर रखा हुआ और महावत के द्वारा बजाया हुआ नगाड़ा बजता हुआ घोषणा कर रहा है कि बुद्धि बल से भी बड़ी है। बुद्धि मनुष्यों की प्रतिष्ठा है इसलिए बुद्धि को परम लाभ माना गया है। संसार में बुद्धि ही कल्याणकारिणी तथा मुक्तिप्रदा है। सज्जनों की दृष्टि में बुद्धि ही सुखदात्री है। जब महामना चाणक्य जी के अपने पक्ष के कुछ लोग भी शत्रु-पक्ष से जा मिले तो उन्होंने कहा-जो लोग अपने हृदय में कुछ पाने की कामना धरके पर-पक्ष में चले गए हैं, वे तो चले ही गए मगर जो अभी तक हमारे पक्ष में हैं वे भी चाहे स्वेच्छा से उधर चले जाएं, बस केवल मेरी बुद्धि मुझसे दूर न जावे क्योंकि इसके पराक्रम की महिमा सैकड़ों सेनाओं से भी बढ़कर है.... और वास्तव में ही महामना चाणक्य ने अपनी बुद्धि के बल से नन्द-साम्राज्य को जड़ से उखाड़ दिया था....। इसके विपरीत जिसके पास बुद्धि नहीं है उसके बारे में कहा गया है-

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा, शास्त्रं तस्य करोति किम्। लोचनाभ्यां विहीनस्य, दर्पणः किं करिष्यति॥

तस्मात्पापं न कुर्वति, पुरुषः शंसितव्रतः।
पापं प्रज्ञा नाशयति, क्रियमाण् पुनः पुनः॥

नष्टप्रज्ञः पापमेव, नित्यमारभते नरः।
पुण्यं प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः॥

जिसके पास स्वयं की बुद्धि नहीं है, उसका तो शास्त्र भी कोई उपकार नहीं कर सकता, जैसे नेत्रों से हीन व्यक्ति का दर्पण भला क्या उपकार कर सकता है? मनुष्य प्रशंसित व्रतों को धारण करता हुआ पाप-कर्म कभी न करे। क्योंकि बार-बार किया जाता हुआ पाप बुद्धि को भी नष्ट कर देता है तथा नष्ट-बुद्धि मनुष्य फिर सदा पापकर्म ही करता चला जाता है। इसके विपरीत बार-बार किया गया पुण्य कर्म बुद्धि को बढ़ाता है....संसार में किसी प्रकार की भी उपलब्धि प्राप्त करने के लिए विकसित बुद्धि का होना अनिवार्य है। बुद्धि के बल से ही व्यक्ति संसार में ऐसे कार्य भी कर गुजरता है जिसकी कभी कल्पना तक नहीं की जा सकती है। बुद्धि का उपयोग करने से व्यक्ति कई समस्याओं का समाधान पलक झपकते ही निकालने में सफल हो जाता है और इसके विपरीत बुद्धि नहीं तो व्यक्ति कई मुसीबतों में स्वतः ही फंस जाता है....

साधारण बुद्धि तो पशु-पक्षियों आदि में भी होती है। मनुष्यों की बुद्धि का क्रमशः विकास होता रहता है। जिस व्यक्ति में अच्छे-बुरे की पहचान करने का सामर्थ्य है मानो उसके पास धी-बुद्धि है। जिसे अन्तर्दृष्टि तथा विवेक प्राप्त हो गया है उसे मानों मेधा-बुद्धि की उपलब्धि हो गई है। संसार में प्रेय और श्रेय दो प्रकार के मार्ग बताए गए हैं, प्रेय है भौतिकवाद का मार्ग और श्रेय है आध्यात्मिकता का मार्ग। जिस व्यक्ति ने इन दोनों पर भली प्रकार चिन्तन करके प्रेय को त्यागकर श्रेय मार्ग अपना लिया है उसे मानो प्रज्ञा की प्राप्ति हो गई है और ऋतंभरा बुद्धि उस व्यक्ति की माननी चाहिए जिसे समाधि प्राप्त हो गई है....। व्यक्ति के वश में है कि वह अपनी बुद्धि का क्रमशः विकास करे। कठोपनिषद् (तृतीय बल्ली) में कहा गया है-

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः॥

एष सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्रय्या बुद्धय्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥

अन्तर्जगत, अर्थात् 'पिण्ड' में इन्द्रियों की अपेक्षा उनके विषय-रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द-दूर हैं। इन्द्रियां दीखती हैं, ये दीखते नहीं....इन्द्रियां स्थूल हैं, ये सूक्ष्म हैं। विषयों की अपेक्षा मन परे है। मन की अपेक्षा बुद्धि परे है। मन का काम 'संकल्प-विकल्प' करना है, बुद्धि का काम 'निश्चय' करना है। बुद्धि की अपेक्षा आत्मा महान् है....परे है....अत्यन्त दूर है....परमात्मा इन सब भूतों में-अन्तर्जगत् तथा बाह्य-जगत् में-छिपा हुआ प्रकट नहीं होता। सूक्ष्मदर्शी लोग 'अग्र-बुद्धि' से-आगे-आगे चलने वाली सूक्ष्म बुद्धि से उसका दर्शन करते हैं। आगे मन, बुद्धि, चित्त आदि का सदुपयोग करने की बात कहने बाद कहा-

उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥ अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्। अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥

उठो, जागो, जिन शान्तात्मा महात्माओं को परमात्मा का वरदान मिल चुका है उनकी शरण में पहुंचो और उनसे ब्रह्म-विद्या का बोध प्राप्त करो। यह मार्ग तेज किए हुए छुरे की धार के समान लांघना कठिन है। कवि लोग कहते हैं कि वह मार्ग दुर्गम है....अब व्यक्ति का ऋतंभरा बुद्धि में प्रवेश होता है तो वह उस ब्रह्म को जानने में सफल हो जाता है और फिर वहां शब्द नहीं, स्पर्श नहीं, रूप नहीं, रस नहीं, गन्ध नहीं, उत्पत्ति-विनाश नहीं। वह नित्य है, अनादि है, अनन्त है, महान् है, सबसे परे है, ध्रुव है....निश्चल है, एक-रस है। मनुष्य जब उस प्रभु को निश्चित् रूप से जान लेता है तब मृत्यु से छूट जाता है....

दलितोद्धार की आड़ में

राजेशार्यः आट्टा पानीपत-१३२१२२ (मो०: ०९९९१२९९३१८)

प्रिय पाठकवृन्द! अंग्रेजों ने भारत में अपने साम्राज्य को चिर स्थायी बनाने के लिए षड्यंत्र रचकर भारत के मूल निवासी आर्यों (हिन्दुओं के पूर्वजों) को विदेशी व आक्रमणकारी प्रचारित किया। अपने मूल नाम (आर्य) को भूल हिन्दू बने लोगों ने भ्रमवश ऐसा ही मानना शुरू कर दिया। इस विचार के कुछ ही समय बाद ऋषि दयानन्द ने इसका खण्डन कर भारतीयों को उनके मूल की याद दिलाने हेतु आर्यसमाज की स्थापना की। वेद व वैदिक मान्यताओं का प्रचार किया व स्वदेश का प्राचीन नाम आर्यावर्त्त प्रचारित किया। पर ऋषि दयानन्द से घृणा करने के कारण हिन्दुओं के राजनैतिक (तिलक व नेहरू जी जैसे) व धार्मिक (स्वामी विवेकानन्द जैसे) नेता भी अंग्रेजों के पक्षपाती हो गये। स्वामी विवेकानन्द कहीं तो आर्यों को भारत का मूल निवासी कह देते हैं और कहीं विदेशी मान बैठते हैं। महाकवि दिनकर जी भी 'संस्कृति के चार अध्याय' में दोनों तरफ लुढ़कते रहे। स्वयं को अंग्रेज मानने वाले नेहरू जी सर्वात्मना अंग्रेजों की मान्यता का प्रचार करने में जुटे रहे। फिर सामान्य जनता तो भ्रमित होनी ही थी। एक तरफ तो धार्मिक पण्डितों ने जनता को ऋषि दयानन्द के पास जाने से रोका, दूसरी तरफ अंग्रेजों की तरह भारत की कांग्रेस सरकार ने ऋषि दयानन्द के सत्य प्रचारक शिष्यों को हतोत्साहित किया। अतः झूठ का प्रचार बढ़ा और उसी के परिणामस्वरूप आर्य-द्रविड़ व विदेशी मूल निवासी आदि के वैमनस्य फैलाने वाले किले खड़े हो गये। कश्मीर से कन्याकुमारी तक बसने वाले आर्यों के वंशजों को आर्य-द्रविड़ में बाँटकर दक्षिण वालों (द्रविड़ों) के मन में उत्तर वालों (आर्यों) की संस्कृति के प्रति घृणा का भाव भरा गया। इस षड्यन्त्र की सच्चाई जानकर स्वतंत्रता के बाद इस दुष्प्रचार को सरकार यदि राष्ट्रहित चाहती तो रोक सकती थी पर सरकार इस विष-वृक्ष को कम्यूनिस्ट लेखकों को प्रोत्साहन देकर सींचती रही। इस असत्य प्रचार से भ्रमित होकर तथाकथित अम्बेडकरवादियों ने स्वयं (दलितों) को द्रविड़ और अन्य वर्ग के लोगों को आक्रमणकारी (आर्य) मानकर उनके प्रति घृणा का प्रचार शुरू कर दिया। जबकि आर्यों को विदेशी मानना डॉ. अम्बेड़कर की मान्यता के बिल्कुल विपरीत है। पर दलितों के नाम पर राजनीति करने वाले स्वार्थी लोग किसी की नहीं मानते।

उसी घृणा व बदले की राजनीति पर चलने वाले अम्बेड़करवादी लोग पेरियार की राह पर चल पड़े। हम सबके पूर्वजों (राम, कृष्ण, हनुमान आदि) को अपमानित करने के लिए उनके चित्रों को जूते मारना व उन्हें जलाना उनके लिए गौरव की बात हो गई है। अयोध्या के राम मन्दिर का विरोध करती हुई उनकी भीम सेना मुस्लिमों के पक्ष में जाकर खड़ी हो जाती है। ये उसी विष वृक्ष के फल हैं, जिसे हिन्दू जनता अपनी अज्ञानता के कारण व राजनेता अपने स्वार्थ के कारण सींचते रहे। तथातथित उच्च जाति के अभिमानी हिन्दुओं ने कभी यह नहीं सोचा होग कि राम-कृष्ण के जिन भक्तों को आज वे अछूत कहकर मन्दिर में प्रवेश करने से मना कर रहे हैं, एक दिन इसकी प्रतिक्रिया में वे ही लोग राम-कृष्ण के पुतले जलाएंगे और स्वयं को बड़ी शान से रावण, महिषासुर, जरासन्ध आदि की सन्तान घोषित करेंगे। यदि कश्मीर के महाराजा रणवीर सिंह के 'मुस्लिमों की शुद्धि' के प्रस्ताव को तत्कालीन पण्डितों ने स्वीकृति दे दी होती तो उनकी सन्तानों को कश्मीर घाटी छोड़कर नहीं

भागना पड़ता। यदि वर्षों तक जातीय अपमान झेलने वाले डॉ. अम्बेड़कर को धर्म के ठेकेदारों ने नासिक के कालाराम मन्दिर में प्रवेश करने दिया होता तो भारत में मरा हुआ बौद्ध मत पुनर्जीवित न होता। एक झूठी मान्यता और झूठा सिद्धान्त सामाजिक वातावरण को कितना जहरीला बना सकता है। यह इस बात का प्रमाण है।

यदि एक बार कोई परम्परा (गलत) समाज में चल पड़े तो उसे हटाना बहुत कठिन होता है। यदि शासन भी अपने स्वार्थ में उसे बढ़ावा दे, तो सुधारने का प्रचार भी क्या कर लेगा! ऋषि दयानन्द के शिष्यों के अतिरिक्त दूसरे राष्ट्र हितैषी विद्वान् भी आर्य-द्रविड़ के इस हवाई किले पर लगभग 125 वर्ष से प्रहार करते आ रहे हैं पर सरकारी सहायता पाकर यह दुर्ग दृढ़ होता चला गया। श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी के नेतृत्व वाली सरकार ने 2003 ई० में इसे धराशायी कर दिया था, पर 2004 ई० में सत्तासीन हुई सरकार ने इसे पुनः खड़ा कर दिया। राखीगढ़ी (हिसार) में कई वर्षों से खुदाई चल रही है और अब उसकी कुछ रिपोर्ट भी सामने आ गई है। 4 जून 2019 को दैनिक भास्कर में लिखा गया था कि डेक्कन डीम्ड युनिवर्सिटी पुणे के पुरातत्त्वविद् प्रो. वसंत शिंदे ने राखीगढ़ी में हुई खुदाई में प्राप्त कंकाल और अवशेषों के आधार पर सिद्ध किया है कि आर्य भारतीय ही थे। इनके बाहर से आने का कोई प्रमाण नहीं है। पुनः 07/09/2019 को दैनिक जागरण में लिखा गया कि राखीगढ़ी में खुदाई में मिले मानव कंकालों की डीएनए रिपोर्ट से सामने आया सच - भारत के ही मूल निवासी थे आर्य। इसमें प्रो. शिंदे पूर्व वाइस चांसलर डेक्कन यूनिवर्सिटी, पुणे और 'जेनटिक साइंटिस्ट डॉ. नीरज द्वारा अपनी रिपोर्ट (लगभग 3 वर्ष के शोध के बाद) को सार्वजनिक कर कहा गया कि मानव कंकाल की डीएनए चाँच में पता चला कि आफगानिस्तान से अंडमान तक सभी का एक ही जीन है। इसमें कोई बड़ा बदलाव नहीं हुआ है। करीब 12 हजार साल से सम्पूर्ण दक्षिण एशिया वासियों का एक ही जीन रहा है यानि सबके एक ही पूर्वज रहे हैं।

डॉ. नीरज राय ने बताया कि भारत में बड़ी तादाद में बाहरी लोगों के प्रवेश का साक्ष्य नहीं मिला है। अगर आर्य बाहर से बाए होते और नरसंहार किया होता तो वे अपनी संस्कृति लाते और हमारी संस्कृति को नष्ट कर देते अर्थात् जिस हड़प्पा आदि (सिन्धु घाटी) की सभ्यता को द्रविड़ बताकर आर्यों द्वारा उसे नष्ट करने का वर्षों से प्रचार किया जा रहा है, वह सर्वथा निर्मूल है। यह बात पहली बार वैज्ञानिक जांच के बाद सामने आई है। जब वैज्ञानिकों की सभी बातें मानी जाती हैं तो इसे मानने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

पर 'मैं नहीं मानता' की धारणा वाले अन्धकार प्रिय उल्लू अब भी जान बूझकर आंख बन्द किये बैठे हैं क्योंकि उन्हें अपना धरातल खिसकता हुआ दिखाई दे रहा है। उसी के आधार पर तो उन्होंने समाज में घृणा की दीवार खड़ी की है। ऐसे घोर स्वार्थी व्यक्ति उस द्वेषाग्नि को बुझने देना नहीं चाहते। यदि उनमें राष्ट्र हित के लिए सत्य जानने, मानने और प्रचारित करने की तनिक भी इच्छा होती तो वे स्वामी दयानन्द, पं. रघुनन्दन शर्मा, आचार्य उदयवीर, डॉ. फतह सिंह, डॉ. अम्बेड़कर, प्रो. श्रीधर वाकणकर आदि किसी भी विद्वान् की बात मान लेते कि लगभग सभी भारतीयों के पूर्वज आर्य भारत के ही मूल निवासी थे। पर उन्होंने ऐसा करने की अपेक्षा अलगाववाद की ऐसी घृणित कल्पना की कि राष्ट्र हितैषी विद्वानों की आंखें फटी रह गईं।

भारतीय दलित साहित्य अकादमी के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर द्वारा लिखित पुस्तक 'विश्व धरातल पर दलित साहित्य' देखने पर मेरा भी कुछ ऐसा ही अनुभव हुआ। यह पुस्तक दलित साहित्य लिखने वालों के लिए निर्देशक का भी काम करती है।

इसमें वर्तमान के कुछ स्वार्थी व अज्ञानी लोगों (तथाकथित उच्च जाति वालों) के अन्याय व अत्याचार का दण्ड प्राचीन काल के महापुरुषों को देने का आह्वान किया गया है और अपना सम्बन्ध उनके विरोधियों से जोड़ने पर जोर दिया है। आज हिन्दू समाज यह भूल चुका है कि उनके पूर्वज आर्य थे, फिर भी आर्यों को भारत के तथाकथित मूल निवासियों (दलितों) पर आक्रमण कर उन पर अत्याचार करने वालों के रूप में दर्शा कर उन के प्रति घृणा व्यक्त की है। 'दलित' शब्द का अर्थ पीड़ित, कुचला गया, शोषित मानकर भी उसे वर्ग विशेष तक सीमित कर दिया। कहीं तो आर्यों के चौथे वर्ण शूद्र को दलित बताया और कहीं आर्यों से भिन्न द्रविड़ को दलित लिख दिया। इन्हें वेद, शास्त्र, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, काव्यशास्त्र आदि से लेकर मुंशी प्रेमचन्द तक की रचनाओं में कहीं भी दलित साहित्य नहीं मिलता। राम, कृष्ण, अर्जुन आदि किसी भी महापुरुष में कोई भी गुण नहीं दिखा। महर्षि वाल्मीकि को आज का दलित वर्ग अपना पूर्वज मानता है तो उनके द्वारा लिखी रामायण दलित साहित्य क्यों नहीं? यदि मल्लाह दलित हैं तो मल्लाह की बेटी के पुत्र महर्षि वेद व्यास द्वारा लिखित महाभारत दलित साहित्य क्यों नहीं? दलित शब्द के अर्थ के अनुसार पाण्डव भी दलित थे, क्योंकि कौरवों द्वारा छल-कपट से उनका राज्य छीनकर उन्हें वनों में भेजा गया था। रामायण में वर्णित निषादराज गुह, तापसी शबरी आदि के प्रति राम का आत्मीय भाव भरा स्नेह व व्यवहार तो इन्हें कल्पना लगता है, जबकि उत्तरकाण्ड (प्रक्षिप्त) में लिखा राम द्वारा किया गया शूद्र तपस्वी, शम्बूक का वध सत्य है। इसी तरह महाभारत में वर्णित कर्ण, दुर्योधन आदि का पाण्डवों के प्रति अन्याय तो कल्पना है और महाभारत में लिखा द्रोणाचार्य द्वारा एकलव्य का अंगूठा काटना सत्य है। हो सकता है कि मनुस्मृति का प्रमाण देकर किसी समय किसी ने शूद्र पर अत्याचार किये हों, पर आज किसी राज या समाज में मनुस्मृति का कोई नियम लागू नहीं है। यही नहीं लगभग 70 वर्ष से देश में डॉ. अम्बेडकर का संविधान चल रहा है। इससे पूर्व लगभग 200 वर्ष अंग्रेजों ने अपना संविधान चलाया और लगभग 600 वर्ष मुस्लिम राजाओं के नियम चले। फिर भी लेखक मनुस्मृति को शूद्रों (दलितों) की दुर्दशा का उत्तरदायी मानकर घृणा व्यक्त करता है पर उसमें वर्णित ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदि आश्रमों व कर्मणा वर्ण व्यवस्था के नियमों पर चलता हुआ यह देश कभी विश्वगुरु रहा होगा, यह बात मानने को बिल्कुल भी तैयार नहीं है। यह दोहरा मापदण्ड इसीलिए अपनाया गया है ताकि तिलक तराजू और तलवार को जूते मारने वाली घृणित राजनीति का महल खड़ा हो सके। यही कारण है कि लेखक ने दलितोद्धार के लिए घृणा, अपमान व सामाजिक बहिष्कार झेलने वाले आर्य समाज के प्रति कृतज्ञता का एक शब्द भी नहीं लिखा। इसके विपरीत 1967 ई. में वैदिक ब्रह्मणों को गोमांस भक्षी बताने वाले दलित नेता बाबू जगजीवन राम का विरोध करने के कारण आर्य समाज की निन्दा की है।

भारतीय परम्परा के अनुसार लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व द्वापर युग के अन्त में हुआ महाभारत युद्ध आर्यों के पतन का काल माना जाता है। उस समय बहुत सी मर्यादाएं टूट गई थीं। उसके बाद ज्ञान की परम्पराएँ लुप्त सी होती गईं और स्वार्थी पण्डितों की मनमानी चल पड़ी। उसी समय प्राचीन कर्मणा वर्ण-व्यवस्था के स्थान पर जन्मना वर्ण-व्यवस्था (मरण व्यवस्था) ने जन्म लिया। उसमें छूआछूत की भावना बहुत बाद में आई थी। ऐसा पश्चिमी मान्यता वाले इतिहासवेत्ता भी मानते हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रो. ओमप्रकाश अंग्रेजों की मान्यता अनुसार आर्यों को विदेशी आक्रमणकारी मानते हैं व भारत की आदिम जातियों को आर्यों से अलग मानते हैं पर उन्होंने भी माना है कि वैदिक काल में आर्यों के चार ही वर्ण थे।

महाभारत में भी वह कर्मणा व्यवस्था वर्णित है। मौर्य वंश के बाद विभिन्न जातियों की उत्पत्ति की गई। स्मृतिकारों ने महाभारत आदि में भी अपने सिद्धान्त मिला दिये। फिर भी शूद्र के प्रति छुआछूत की प्रथा मुस्लिम काल में बढ़ी थी। अत: इसका दोष प्रचीन आर्यों को न दिया जाए। वेदों में किसी भी वर्ण के प्रति भेदभाद व घृणा की कोई बात नहीं है। देखिये -

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्रे उतार्ये।। अथर्व. 19.62.1

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु, रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचारुचम्।। यजु. 18.48

अथर्ववेद में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में प्रिय करने की प्रार्थना की गई है। तो दूसरे में कहा गया है- हे प्रभो! चारों वर्णो में मेरी रुचि हो अर्थात् मैं सबसे प्रेम करूं और सभी मुझसे प्रेम करें। हां, वेद में नियम तोड़ने वालों (वह चाहे किसी भी वर्ण का हो) को दस्यु कहा है और राजा के लिए उन्हें दण्ड देने का विधान किया है (ऋग्वेद 1.51.8)। इनके अतिरिक्त आत्मिक उन्नति में बाधा डालने वाले काम, क्रोध आदि आध्यात्मिक शत्रुओं को भी दस्यु कहा है। अब आज का कोई तथाकथित दलित स्वयं को वैदिक काल का दस्यु, असुर, राक्षस, अनार्य आदि मानकर वेद को शूद्र विरोधी बताकर घृणा व्यक्त करे तो वह स्वयं अपने पैर पर थूककर दूसरे के साथ लड़ने वाली बात है। हम मानते हैं कि कई सौ वर्ष तक धूर्त, स्वार्थी व अज्ञानी लोगों ने शूद्रों पर अत्याचार किये हैं पर उनका दण्ड वर्तमान या प्राचीन लोगों को देना कहां का न्याय है?

वर्ण व्यवस्था के बदलते हुए स्वरूप को दर्शाते हुए डॉ. ओमप्रकाश ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास' में लिखा है -

"उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उत्तर वैदिक काल (600 ई.पू. तक) में भी वे ही ब्राह्मण थे जिन्हें वेदों का ज्ञान था और जिनमें ऋत्विज् का कार्य करने की क्षमता थी। ...ज्ञान के कारण क्षत्रिय भी ब्राह्मण बन सकते थे। ...शूद्रों को भी इस काल में वैदिक साहित्य पढ़ने और पवित्र अग्नि के पास जाने का अधिकार था।" (पृ. 33-34)

"(लगभग 600 ई.पू. से 300 ई.पू.) कात्यायन ने श्रौत सूत्र में लिखा है कि वैश्य और राजन्य भी दीक्षित होने पर ब्राह्मण शब्द से संबोध्य है। इसका स्पष्ट अर्थ हुआ कि वर्ण गुण और कर्म पर आधारित था, जन्म पर नहीं।"

"(300 ई.पू. से 300 ई.) महाभारत के अनुसार एक शूद्र भी अच्छे कर्म करके ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य हो सकता है। ...उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गीता रचना के समय तक वर्ण का आधार गुण और कर्म थे जाति से उनका कोई सम्बन्ध न था।" (पृ. 35-36)

"महाभारत शांतिपर्व से यह स्पष्ट है कि वैदिक साहित्य में वर्णित चारों वर्णो के अतिरिक्त इस समय समाज में अनेक अन्य जातियां विद्यमान थीं। महाभारत में भी (मनुस्मृति की तरह) सभी जातियों की उत्पत्ति अनुलोम आरै प्रतिलोम विवाहों से बतलाई गई है। जातियों की उत्पत्ति का यह सिद्धान्त उन लेखकों की कल्पना की सूझ थी जिन्होंने महाभारत के शांतिपर्व में इन प्रकरणों को जोड़ा। ...ये प्रकरण महाभारत में मनुवंश के उन्हीं विद्वानों ने जोड़े थे जिन्होंने मनुस्मृति की रचना की।" (पृ. 39)

लेखक के इन वाक्यों से स्पष्ट सिद्ध हो रहा है कि महाभारत ग्रन्थ पहले लिखा जा चुका था और उसमें बाद में मिलावट की गई। वे यह भी मानते हैं कि मनुस्मृति भी महाभारत से भी बहुत पहले लिखी जा चुकी थी। उसमें भी मिलावट हुई है। तभी तो उसमें परस्पर विरुद्ध व प्रसंग विरुद्ध बातें मिलती हैं।

"(300 ई. से 700 ई.) स्मृतिकारों ने वर्णो को जातियों में परिवर्तित करने का प्रयत्न किया। इसका

एक कारण यह था कि वेदों में केवल चार वर्णों का उल्लेख है और तत्कालीन समाज में अनेक जातियाँ थीं। यदि वे अनेक जातियों के अस्तित्त्व को स्वीकार करते तो वेदों को अपौरुषेय (परमात्मा द्वारा प्रदत्त ज्ञान) कैसे मानते? इसलिए उन्होंने वर्ण तो चार ही माने किन्तु अन्य जातियों की उत्पत्ति इन चार वर्णों के अन्तर्वर्णीय विवाहों से बतलाई। इस प्रकार उन्होंने वर्णों का निर्धारण जन्म के आधार पर किया और जाति और वर्ण में कोई अन्तर नहीं रहा।" (पृ. 41)

"यवन, पह्लव, शक, कुषाण आदि जातियाँ विदेशी थीं। उन्होंने अधिकतर प्रशासन में भाग लिया, अतः गुप्त काल से पूर्व ही उन्हें क्षत्रिय वर्ण में स्थान दे दिया गया। ....वैवाहिक संबंधों और खान पान के नियमों में अभी इतनी संकीर्णता नहीं आई थी जितनी कि परवर्ती काल में आई। ....शूद्रों में भी इनके व्यापारी, किसान और शिल्पी थे। उनमें से अनके सेना में योद्धा भी थे। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जाति सिद्धान्त इस काल में व्यवसाय के चुनाव में बाधक सिद्ध नहीं हुआ। (पृ. 42)

"(गुप्तोत्तर काल लगभग 700 ई.) निस्सन्देह ब्राह्मणों ने वर्ण को जाति का पर्यायवाची शब्द मानकर जन्म के आधार पर वर्ण मानना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने मुसलमानों के आक्रमणों के बाद रक्त शुद्धि पर बहुत बल दिया और वैवाहिक संबंधों, खान, पान और व्यवसायों के चुनाव संबंधी नियमों को अत्यंत कठोर बना दिया। किन्तु समाज ने गुण और कर्म पर आधारित वर्ण सिद्धान्त का पूर्णतः त्याग नहीं किया।" (पृ. 43)

"शिल्पियों और द्विजों की संस्कृति से हीन सांस्कृतिक स्तर वाले सभी व्यक्तियों को, जिनकी अपनी अलग श्रेणियां थीं, शूद्र कहा गया। उनकी आर्थिक स्थिति इस काल में पहले की अपेक्षा बहुत अच्छी हो गई थी। इसलिए उन्हें उच्च पदों पर भी नियुक्त किया गया और समाज में उनकी प्रतिष्ठ भी बढ़ी। ....जो व्यक्ति सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत नीचे थे या गंदे कार्य करते थे उन्हें अंत्यज या मलेच्छ कहा गया है। उनकी गणना चारों वर्णों में नहीं की गई।" (पृ. 44)

"ऐसा प्रतीत होता है कि अस्पृश्यता अपने पूर्ण विकसित रूप में मौर्य काल के अन्त (184 ई.पू.) में प्रकट हुई। तभी तो मनु ने शूद्रों के विरुद्ध इतने कठोर नियम बनाए हैं।" (पृ. 87)

"(स्मृतियों का काल - 200 ई. से 500 ई.) संभवतः चमार भी अस्पृश्य नहीं समझते जाते थे। अस्पृश्यता के नियम अधिकतर चाण्डारों (कुत्तों तक का मांस खाने वाले मैले-कुचैले कपड़े पहनने वाले) के साथ ही लगाए जाते थे।" (पृ. 89)

प्रबुद्ध पाठक! विदेशी लेखकों को मान्यता देने के कारण प्रो. साहब ने प्राचीन ग्रन्थों का लेखन काल (जो सम्भवतः उनमें मिलावट का काल था) बहुत नवीन रखा है तथापि इससे यह सिद्ध होता है कि आर्यों की कर्मणा वर्ण व्यवस्था बहुत लम्बे समय चली है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि आज के दलित के पूर्वज प्राचीन काल में भी शूद्र थे। दलितों च उच्च जाति वालों के मिलते जुलते गोत्र भी यही सिद्ध कर रहे हैं कि लोग अपनी योग्यता व रुचि के अनुसार काम-धन्धे बदलते रहे हैं। फिर दलितोद्धार की आड़ में अघटित को इतिहास बनाने का षड्यंत्र क्यों रचा जा रहा है? (क्रमशः)

❑❑

भूल सुधार

(राजेशार्यः आट्टा, मो०: ०९९९१२९१३१८)

प्रबुद्ध पाठकवृन्द! नवम्बर 2019 के अंक में पृष्ठ सं. 26 के पहले पैरे की दसवीं पंक्ति में वीर सावरकर के बड़े भाई का नाम छपने से रह गया था। अतः इस वाक्य को गणेश (बाबा राव) सावरकर के अंतिम दिनों. ...। इस रूप में समझा जाये। पृ. 27 पर कविता की छठी पंक्ति में 'किसी' को 'किसकी' व चौदहवीं पंक्ति में 'लिख' को लिखे' पढ़ा जाये।

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/१२/२०१६
भार- ४० ग्राम

दिसम्बर 2019

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2018-20
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१८-२०
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2018-20

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● उपहार संस्करण	मुद्रित मूल्य 1100 रु.	प्रचारार्थ 750 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30¸8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650522778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में......................
ग्राम......................
डा0......................
जिला......................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।